महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अन्तर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)
नैक द्वारा 'A' ग्रेड प्राप्त / Accredited with 'A' Grade by NAAC

मध्यकालीन हिन्दी काव्य

निर्धारित पाठ्यपुस्तक

एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
द्वितीय सेमेस्टर
प्रथम पाठ्यचर्या (अनिवार्य)
पाठ्यचर्या कोड : MAHD – 07

दूर शिक्षा निदेशालय
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
पोस्ट – हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा – 442001 (महाराष्ट्र)

मध्यकालीन हिन्दी काव्य (निर्धारित पाठ्यपुस्तक)

प्रधान सम्पादक

प्रो॰ गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय एवं विभागाध्यक्ष हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास
अनुसंधान अधिकारी एवं पाठ्यक्रम संयोजक– एम. ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक मण्डल

प्रो॰ आनन्द वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ अरुण कुमार त्रिपाठी
प्रोफेसर एडजंक्ट, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास

प्रकाशक

कुलसचिव, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट : हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र, पिन कोड : 442001

© सम्पादक

प्रथम संस्करण : जून 2018

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना, संयोजन एवं पाठ्यचयन
आवरण, रेखांकन, पेज डिज़ाइनिंग, कम्पोज़िंग ले-आउट एवं टंकण

पुरन्दरदास

कार्यालयीय सहयोग

श्री विनोद रमेशचंद्र वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

टंकण कार्य सहयोग (केशवदास, सुन्दरदास एवं भूषणकी निर्धारित कृतियाँ)

सुश्री राधा सुरेश ठाकरे
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

आवरण पृष्ठ पर संयुत विश्वविद्यालय के वर्धा परिसर स्थित गांधी हिल स्थल का छायाचित्र श्री सुरेश कुमार यादव निम्न श्रेणी लिपिक, प्रकाशन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा से साभार प्राप्त

हम उन समस्त साहित्यकारों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं जिनकी कृतियों का उपयोग प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में किया गया है । हम उन समस्त रचनाकारों, अनुवादकों, सम्पादकों, संकलनकर्त्ताओं, सर्वाधिकारधारकों, प्रकाशकों, मुद्रकों एवं इंटरनेट स्रोतों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिनकी सहायता से प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में संकलित रचनाओं के पाठ उपलब्ध हुए हैं।

http://hindivishwa.org/distance/contentdtl.aspx?category=3&cgid=77&csgid=65

- यह पाठ्यपुस्तक दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा संचालित एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम में प्रवेशित विद्यार्थियों के अध्ययनार्थ उपलब्ध करायी जाती है।
- इस कृति का कोई भी अंश लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
- इस पाठ्यपुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन रूप से प्रकाशित करने के सभी प्रयास किए गए हैं तथापि संयोगवश यदि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा संताप के लिए सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा।
- किसी भी परिवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र वर्धा, महाराष्ट्र ही होगा।

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	कवि	पृष्ठ क्रमांक
01.	कबीर	05 – 23
02.	मलिक मुहम्मद जायसी	24 – 33
03.	सूरदास	34 – 38
04.	तुलसीदास	39 – 68
05.	केशवदास	69 – 80
06.	बिहारी	81 – 93
07.	सुन्दरदास	94 – 103
08.	भूषण	104 – 114
09.	घनानन्द	115 – 124

कबीर

साखी

(1)

सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार॥

शब्दार्थ – महिमा = महत्ता, बढ़ाई। उपगार = उपकार ('क' ध्वनि का 'ग' में परिवर्तन प्राय: देखा जाता है; यथा – कंकण = कंगण। काक = काग।) अनँत लोचन = ज्ञान-नेत्र, ऐसे नेत्र जिनका कभी अन्त न हो । अनँत = परमात्मा क्योंकि वह अविनाशी है, उनका कोई अन्त नहीं है । दिखावणहार = दिखलाने वाले।

(2)

सतगुर लई कमाँण करि, बांहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर॥

शब्दार्थ – कमांण = धनुष। करि = हाथ में। बांहणलागा = चलाने लगा। बाह्या = चलाया, (तीर) छोड़ा। भीतरि रह्या = विंधकर रह गया, स्थायी प्रभाव डाला।

(3)

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहूँणां, बहुरि न आँवौं हट्ट॥

शब्दार्थ – दीपक = चित्त का प्रतीक। तेल = भगवत् प्रेम का प्रतीक। बाती = ज्ञान की प्रतीक। अघट्ट = कभी न घटने वाली, अनन्त। बिसाहूँणां = खरीददारी, क्रय। हट्ट = बाजार (संसार का प्रतीक)।

(4)

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा क्रमनां, कबीर सुमिरन सार॥

शब्दार्थ – दूजा = दूसरा, अन्य। मनसा = मन से। वाचा = वचन से। क्रमनां = कर्म से। सार = तत्त्व, वास्तविकता।

(5)

लम्बा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।
कहौ संतौ क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरिदीदार॥

शब्दार्थ – विकट = भयंकर। मार = लुटेरे। दीदार = दर्शन, साक्षात्कार।

(6)

बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैंगे आइ॥

शब्दार्थ – बिरहनि = आत्मा का प्रतीक जो परमात्मा से बिछुड़ने का अनुभव करती है। ऊभी = खड़ी हुई। सिरि = किनारे। बूझ = पूछती है। एक सबद कहि पीव का = प्रियतम (परमात्मा) का एक शब्द (संदेश)।

(7)

बिरह भुवंगम तन बसै, मन्त्र न लागै कोइ।
राम वियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ॥

शब्दार्थ – भुवंगम = भुजंग-सर्प। मन्त्र न लागै कोइ = किसी मंत्र का प्रभाव नहीं होता। विरह जाग्रत् होने पर यह उसी प्रकार नहीं जाता जैसे किसी सर्प पर मन्त्र का प्रभाव न हो। बहुत से सर्पों के विष गारुड़ी अपने मन्त्र-बल से उतार देते हैं। परन्तु विरह-सर्प ऐसा नहीं है। राम-वियोगी = राम से बिछुड़ी आत्मा, परमात्मा से वियुक्त होने का अनुभव करने वाला भक्त। बौरा = पागल। 'राम वियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ' – राम का वियोगी यदि जीवित रहे तो पागल हो जाता है। वस्तुतः संसार की दृष्टि से उसका व्यवहार पागलों जैसा रहता है, क्योंकि वह राम के विरह में उन्मत्त रहता, दीन-दुनिया की सुध-बुध भूला रहता है।

(8)

अंषड़ियाँ झाँईं पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि॥

शब्दार्थ – अंषड़ियाँ = आँखों में। झाँई – धुँधलापन, ज्योतिहीनता। जीभड़ियाँ = जीभ पर।

(9)

इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव।
लोही सींचौ तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव॥

शब्दार्थ – तन का दीवा करौं = शरीर को दीपक बनाऊँ। बाती मेल्यूँ जीव = प्राणों की बाती उसमें डालूँ। लोही सींचौ तेल ज्यूँ = रक्त के तेल से प्राण रूपी बाती को भिगोऊँ। मुख देखौं पीव = ऐसे दीपक के प्रकाश में प्रियतम (परमात्मा) के मुख का दर्शन करूँ।

(10)

कै बिरहनि कूँ मींच दे, कै आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणां, मोपैं सह्या न जाइ॥

शब्दार्थ – मींच = मृत्यु। आपा = स्वयं को (परमात्मा-प्रियतम को)। आठ पहर = रात-दिन (एक प्रहर 3 घंटे का होता है)। दाझणां = दग्ध होना, विरह में जलना। मोपैं = मुझ से।

(11)

अगनि जू लागि नीर में, कंदू जलिया झारि।
उत्तर दक्षिण के पंडिता, रहे विचारि विचारि॥

शब्दार्थ – अगनि = अग्नि, ज्ञान-विरह की अग्नि। नीर = जल, भगवद्-प्रेम रूपी जल। कंदू = कीचड़, विषय-वासनाओं रूपी कीचड़। जलिया = जल गया, भस्म हो गया। झारि = पूर्णतया। पंडिता = कोरे शास्त्रज्ञ। 'अगनि जू लागि नीर में' = पानी में आग लग गई, ईश्वरीय प्रेम की अवस्था से ज्ञान-विरह का उदय हुआ। 'कंदू जलिया झारि' = कीचड़ पूर्णतया जल गया। ज्ञान-विरह के उदय होने से विषय-वासनाओं के संस्कार तक नष्ट हो गये। 'उत्तर दक्षिण के पंडिता' = सभी दिशाओं के कोरे शास्त्रज्ञ तर्क और विवाद ही करते रह गये। तात्पर्य यह है कि ईश्वरीय प्रेम और ज्ञान-विरह की अवस्था साधना का विषय है जिसकी अनुभूति साधक को होती है। कोरे शास्त्रज्ञ पण्डित साधना के अभाव में विचार ही करते रह जाते हैं। शास्त्र-ज्ञान मात्र से इस अवस्था की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

(12)

समन्दर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषाँ चढ़ि गई॥

शब्दार्थ – समंदर = माया अथवा संसार रूपी सागर। आगि = ज्ञान रूपी अग्नि। नदियाँ = विषय-वासनाएँ अथवा बहिर्मुखी चित्तवृत्तियाँ। जागि = जाग कर, ज्ञान में जाग्रत् होकर। मंछी = जीवात्मा रूपी मछलियाँ (प्रतीक)। रूषाँ = रूख पर, वृक्ष पर (सुषुम्ना नाड़ी का प्रतीक)।

(13)

अन्तरि कवल प्रकासिया, ब्रह्मन बास तहाँ होइ।
मन भवरा तहां लुबधिया, जाँणेंगा जन कोइ॥

शब्दार्थ – अन्तरि = भीतर, अपने ही शरीर के भीतर ब्रह्माण्ड में – शीर्ष स्थल में। कवल = कमल – सहस्रार चक्र से तात्पर्य है जिसे सहस्र दल कमल भी कहते हैं। प्रकासिया = खिला हुआ है। मन-भवरा = मनरूपी भौंरा (रूपक अलंकार)। लुबधिया = लुब्ध है, मुग्ध हो रहा है। जाँणेंगा = जानेगा। जन = भक्त या साधक। 'अन्तरि कवल प्रकासिया' = मेरे (शरीर के) भीतर ही (सहस्र दल) कमल खिला हुआ है। 'ब्रह्मन बास तहाँ होइ' = वहीं सहस्रार चक्र में ब्रह्म का वास (स्थिति) है। 'मन भवरा तहां लुबधिया' = उस सहस्र दल कमल (सहस्रार चक्र रूपी कमल) पर मनरूपी भौंरा लुब्ध हो रहा है।

(14)

पाणीं ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ॥

शब्दार्थ – तैं = से। हिम = बर्फ। बिलाइ = विलीन। ह्वै गया = हो गया।

(15)

सुरति समाँणों निरति मैं, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, अब खूले स्यंभ दुवार॥

शब्दार्थ – सुरति = आत्म-स्वरूप की स्मृति, शब्द-डोर श्रुति, चिन्मुख प्रेम (सुन्दर रति), सविकल्प समाधि। निरति = निरालम्ब ध्यान की स्थिति, निर्विकल्प समाधि जिसमें ध्याता-ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी समाप्त होकर तीनों की स्थिति एकाकार हो जाती है। सहज वैराग्य की स्थिति। इसलिए निरति को 'निरधार' आधारहीन या निरालम्ब कहा गया है। सविकल्प समाधि का निर्विकल्प समाधि में परिणत हो जाना ही सुरति का निरति में समा जाना है। शब्द के सहारे जाग्रत् चिन्मुख प्रेम जब परमात्मा के साथ सहज रूप से एकाकार हो जाता है – तब सुरति निरति में समा जाती और निरति निराधार हो जाती है। जहाँ द्वैत नहीं वहीं आधार भी समाप्त हो जाता

है। शब्द सुनि (डोर) का यही निरति से परिचय है। इस अवस्था में उस स्वयंभू परमात्मा के द्वार खुल जाते हैं।

(16)

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाँहि।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माँहि॥

शब्दार्थ – मैं = अहंकार। अँधियारा = अज्ञान की प्रतीक। दीपक = ज्ञान का प्रतीक। दीपक-देख्या माँहि = ज्ञानरूपी दीपक के प्रकाश में देखने से समस्त अज्ञान रूपी अँधकार मिट गया। प्रतीकात्मकता – 'दीपक' में अँधियारा प्रतीक है। अहँकार और ममता माया के ही रूप हैं। इनके दूर हुए बिना ज्ञान का उदय सम्भव नहीं हैं।

(17)

आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।
ताका पांणी को हँसा पीवै, बिरला आदि विचारि॥

शब्दार्थ – आकासे = आकाश में, सहस्रार चक्र में। मुखि औंधा कुवा = अधोमुख कुआँ – ब्रह्मरन्ध्र जिसका मुख (छिद्र) नीचे की ओर होता है। पाताले = पाताल में – मूलाधार चक्र में। पनिहार = पानी भरने वाली कुण्डलिनी शक्ति, ब्रह्मरन्ध रूपी अधोमुख कूप से स्रवित अमृत जल पीने के कारण कुण्डलिनी को पनिहारी कहा गया है। पाणी = ब्रह्मरन्ध्र से स्रवित अमृत। को = कौन। हंसा = जीवन्मुक्त आत्मा या साधक। विरला = कोई-कोई ही। आदि = आदि तत्त्व, मूलतत्त्व का विचार करके।

(18)

कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपे सोई पिवै, नहीं तो पिया न जाइ॥

शब्दार्थ – भाठी = भट्टी। कलाल = मदिरा बेचने वाला, भट्टी की आग पर औंटाकर एक विशेष प्रकिया द्वारा (भाप-यंत्र द्वारा) कलाल जौ, गुड़, गन्ने के रस आदि से शराब बनाते थे। इसे शराब खींचना कहते थे। 'कलाल की भाठी' से कबीर का तात्पर्य उसी भट्टी से है जिस पर शराब खींची जाती है।

(19)

सबै रसांइण मैं किया, हरि सा और न कोइ।
तिल इक घट मैं संचरे, तौ सब तन कंचन होइ॥

शब्दार्थ – रसांइण = रसायन, यह आयुर्वेद शास्त्र का शब्द है। काष्ठादि औषधियों की अपेक्षा अत्यल्प मात्रा में भी रसादिक औषधि के प्रयोग से रोगों को बहुत लाभ होता है। (अल्पिमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसंगतः। क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः॥) रसोपरसादि के योगों और स्वर्णादि धातुओं की भस्म को ही आयुर्वेद में रस या रसायन कहते हैं। तिल इक = एक तिल के बराबर अर्थात् अत्यल्प भी। घट = शरीर, हृदय। कंचन होइ = कंचन के समान खरा, शुद्ध (निर्विकार) हो जाय। शरीर को निर्विकार रखने के लिए जैसे रसादिक औषधियों की अति अल्प मात्रा भी पर्याप्त है, वैसे ही हृदय को शुद्ध रखने के लिए हरि जैसा रसायन कोई दूसरा नहीं।

(20)

सातौं सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।
ते मन्दिर खाली पड़े, बैसण लागै काग॥

शब्दार्थ – सातौं सबद = संगीत के सप्त स्वर (सा, रे ग, म, प, ध और नि)। जु = जो। राग = गाने, अनेक प्रकार राग-रागनियाँ। मन्दिर = भवन, प्रासाद, महल। बैसण लागे = बैठने लगे।

(21)

कबीर कहा गरबियो, देही देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबौ नहीं, ज्यूँ काँचली भुवंग॥

शब्दार्थ – गरबियौ = घमण्ड करते हो। देही = शरीर। सुरंग = सुन्दर। बीछड़ियाँ = बिछुड़ने पर (पंजाबी का प्रभाव)। मिलिबौ = मिलना (ब्रजभाषा रूप)। काँचली = केंचुल-सर्प के शरीर पर चढ़ने वाला अभ्रक जैसा खोल जिसे वह उतार देता है। भुवंग = सर्प।

(22)

मनिषा जनम दुर्लभ है, देह न बारम्बार।
तरवर थैं फल झड़ि पड़्या बहुरि न लागै डार॥

शब्दार्थ – मनिषा = मनुष्य का। बहुरि = फिर, पुनः । डार = डाली, शाखा। तरवर = वृक्ष। मनुष्य का जन्म = तरुवर, वृक्ष। फल = मनुष्य शरीर – मनुष्य का शरीर बार-बार नहीं मिलता, वृक्ष से झड़ा (गिरा हुआ) फल पुनः उस पर नहीं लगता।

(23)

यह तनु काचा कुँभ है, लियां फिरै था साथि।
ढक्का लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि॥

शब्दार्थ – काचा = कच्चा। कुंभ = घड़ा। लियां फिरै था = लिए फिरता था (पंजाबी रूप – लियां)। ढक्का = धक्का, ठोकर। 'कछू न आया हाथि' = कुछ हाथ न आना – मुहावरा अर्थात् कोई लाभ नहीं मिला – मनुष्य शरीर पाना व्यर्थ गया। मनुष्य शरीर की क्षण भंगुरता की ओर संकेत कर उसके सदुपयोग का निर्देश किया गया है।

(24)

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तो निकसी भाजि।
कब लग राखौं हे सखी, रुई पलेटी आगि॥

शब्दार्थ – मैं-मैं = अहंकार। बलाइ = विपत्ति, संकट। सकै तो निकसी = निकल सके तो। भाजि = भाग (सम्भव हो तो निकल भाग)। हे सखी ! (एक आत्मा दूसरी को सम्बोधित कर रही है ।) रुई पलेटी आगि = रुई में लगी हुई आग से रुई की रक्षा कब तक की जा सकती है। जितना रुई को पलटेंगे उतनी ही अग्नि रुई को भस्म करेगी। इसी प्रकार अहंकार की अग्नि से आत्म-ज्ञान की रक्षा कैसे हो सकती है। अहंकार तो ज्ञान को नष्ट कर जीवन का ही सर्वनाश कर देता है। अत: इस अहंकार की अग्नि से तो निकल भागना ही श्रेयस्कर है।

(25)

कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवणहार।
हलके हलके तिरि गए, बूड़े तिनि सिर भार॥

शब्दार्थ – नाव = जीवन का प्रतीक। कूड़े = निकम्मे (अज्ञानी पुरुष)। खेवण-हार = खेने वाले मल्लाह, हलके-हलके निर्मल, निर्विकार आत्मा वाले। बूड़े = डूब गये। तिनि = वे ही। सिर भार = सिर पर (पापों का) बोझा।

(26)

काया देवल मन धजा, विषै लहरि फरराइ।
मन चाल्यां देवल चलें, ताका सर्वस जाइ॥

शब्दार्थ – काया = शरीर। देवल = मन्दिर-देवालय। धजा = ध्वजा-झंडा। विषै-लहरि = विषय-रूपी लहरों से। चाल्यां = चलने पर। ताका = उसका। सर्वस जाइ = सर्वस्व नष्ट हो जाता है।

(27)

काया कसूँ कमांण ज्यूँ, पंचतत्त करि बांण।
मारौं तो मन मृग को, नहीं तो मिथ्या जांण॥

शब्दार्थ – कमांण = धनुष (शरीर को धनुष के समान कसूँ – संयम में रखूँ)। पंच-तत्त = पंच तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) जिनसे यह शरीर बना है। (पाँचों तत्त्वों को बाण बनाऊँ और शरीर रूपी कसे हुए धनुष पर चढ़ाकर चलाऊँ।) मन मृग = मन रूपी हिरण (चंचलता के कारण मन को हिरण कहना ठीक ही है।) मिथ्या जांण = (यदि मन रूपी हिरण को न मार सकूँ तो फिर सारा ज्ञान मिथ्या ही है।)

(28)

जन कबीर का सिषर घर, बाट सलैली सैल।
पाँव न टिकै पपीलका, लोगनि लादे बैल॥

शब्दार्थ – जन = भगवान् के भक्त-साधक। सिषर = शिखर, ब्रह्माण्ड, सहस्रार चक्र। बाट = राह, मार्ग। सलैली = फिसलन ने भरी, रपटीली। सैल = मार्ग। पपीलका = चींटी।

(29)

त्रिष्णा सींची नां बुझे, दिन दिन बढ़ती जाइ।
जबासा के रूष ज्यूँ, घण मेंहाँ कुम्हिलाइ॥

शब्दार्थ – त्रिष्णा = तृष्णा-कामना। बढ़ती जाइ = बढ़ती जाती है। जबासा = एक पौधा जो गर्मियों में हरा रहता है और बरसात में पानी पड़ने पर मुरझा जाता है। घण मेंहाँ = घनी वर्षा में।

(30)

सब आसण आसातणां, निवर्तिकै को नाहिं।
निवरति कै निबहै नहीं, परवर्ति परपंच माँहिं॥

शब्दार्थ – सब आसण = सबका आसन, सबकी स्थिति। आसातणां = आशा के नीचे अर्थात् आशा के अधीन। निवर्तिकै = निवृत्ति मार्गी। को नाहिं = कोई नहीं है। निवरति कै = निवृत्ति करना। निबहै नहीं = निभता नहीं है। परवर्ति = प्रवृत्ति। परपंच = प्रपंच = जंजाल। प्रवृत्ति-निवृत्ति = संसार के कर्मों एवं धन्धों में लगे रहना प्रवृत्ति है तथा संसार को त्याग देना निवृत्ति मार्ग है। संन्यासी निवृत्ति-मार्गी होते हैं, गृहस्थ-जन प्रवृत्ति-मार्गी।

(31)

कबीर इस संसार कौ, समझाऊँ कै बार।
पूँछ जु पकड़े भेड़ की, उतर्‌या चाहै पार॥

शब्दार्थ – कै = कितनी। पूँछ जु पकड़ै = सहारा लेता है। भेड़ = 1. चौपाये पशु की एक प्रजाति, जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह बिना सोचे-विचारे आगे चलने वाले का अनुसरण करती चलती है। इसी से अग्रगामी भेड़ के खड्डे में गिर जाने पर अनुगामिनी समस्त भेड़ें भी बिना विचार किए उसी खड्डे में गिरती जाती हैं। 2. भेद = मेरा-तेरा, अपना-पराया आदि की भेद-बुद्धि। इसे दर्शन की भाषा में द्वैतभाव भी कहा जाता है। उतर्‌या चाहे पार = (संसार-सागर से) पार होना चाहता है मुक्त होना चाहता है।

(32)

भगति बिगाड़ी कांमियां, इन्द्री केरै स्वादि।
हीरा खोय हाथ थैं, जनम गँवाया बादि॥

शब्दार्थ – कांमियां = कामी मनुष्य ने (कामी मनुष्य ने भक्ति को दूषित कर दिया)। स्वादि = स्वाद के लिए। केरै = के (इन्द्रियों के स्वाद के लिए)। हीरा = परमात्मा रूपी हीरा – आत्म-ज्ञान रूपी हीरा। बादि = व्यर्थ।

(33)

विषै कर्म की कंचुली, पहरि हुआ नर नाग।
सिर फोड़ै सूझै नहीं, को आगिला अभाग॥

शब्दार्थ – कंचुली = केंचुली जो साँप के ऊपर खोल की तरह चढ़ जाती है। आगिला = पूर्व जन्म का। अभाग = दुर्भाग्य अर्थात् पाप (लक्षण से)।

(34)

सहज सहज सबकौ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजैं विषया तजी, सहज कहीजै सोइ॥

शब्दार्थ – चीन्हैं = पहचानता है । सहजैं = सहज ही, स्वाभाविक रीति से। विषया = विषय-वासनाएँ। तजी = त्याग दी।

(35)

कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हवै तब दोई।
चढ़ि मसीति एकै कहै, दरि क्यूँ साचा होइ॥

शब्दार्थ – स्वादि बसि = जीभ के स्वाद के वशीभूत होकर । काजी = मुसलमानों का पुरोहित या धर्म-व्यवस्था देने वाला। 'ब्रह्म हवै तब दोई' – जब बकरा या किसी जीव को मारता है तब कहता है कि ब्रह्म और यह जीव-बकरा दो (अलग-अलग) हैं। चढ़ि मसीति = मस्जिद पर चढ़कर (अजान देते समय)। एकै कहै = कहता है कि खुदा (ब्रह्म) एक ही है। दरि = परमात्मा के दरबार में। क्यूं साचा होइ = सच्चा कैसे हो सकता है।

(36)

सेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाइ।
झिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौं कहाँ खुदाइ॥

शब्दार्थ – सबूरी = सब्र-सन्तोष। बाहिरा = बाहर, बिना। हज-काबै = मुसलमान अरब में अपने तीर्थस्थल काबा को जाते हैं इसे हज करना या हज के लिए जाना कहते हैं। स्याबति = पूर्ण, सच्चा। तिनकौं = उनके लिए।

(37)

काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट।
पांहनि बोई पृथमी, पण्डित पाड़ी बाट॥

शब्दार्थ – केरी = की (अवधी शब्द)। मसि = स्याही का लिख। कर्म-कपाट = कर्म रूपी किवाड़ (रूपक अलंकार)। पांहनि = पत्थरों से। बोई पृथिमी = पृथ्वी को (पत्थरों से) बो दिया है अर्थात् हर

जगह मूर्ति पूजा प्रचलित कर दी है। 'पण्डित पाड़ी बाट' = ब्राह्मणों ने ऐसी राह (पद्धति) चला दी है।

(38)

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जांणि।
दसवां द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिंछाणि॥

शब्दार्थ – दसवाँ द्वारा = ब्रह्मरंध्र। देहुरा = देवालय। पिंछाणि = पहचान ले।

(39)

मूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ।
कदली सीप भवंग मुषी, एक बूँद तिहुँ भाइ॥

शब्दार्थ – मूरिष = मूर्ख। जलि = जल में। न तिराइ = तैरता नहीं है। कदली = केला। भवंग मुषी= साँप के मुख में जाने वाली। तिहुँ भाइ = तीन रूप।

(40)

भगति हजारी कपड़ा, तामैं मल न समाइ।
साषित काली काँवली, भावै तहाँ बिछाइ॥

शब्दार्थ – हजारी कपड़ा = बहुमूल्य कपड़ा। तामैं = उसमें। मल = मैल। साषित = शाक्त। काँवली = कम्बल। भावै = अच्छा लगे (जहाँ चाहो)।

(41)

सन्त न छाड़ै सन्तई, जे कोटिक मिलैं असंत।
चंदन भुवंगाबैंठिया, तउ शीतलता न तजंत॥

शब्दार्थ – सन्तई = संत के गुण, साधुता, सज्जनता। जे = यदि। कोटिक = करोड़ों। असंत = असाधु, दुर्जन। भुवंगा = भुजंग, सर्प। तउ = फिर भी। न तजंत = नहीं त्यागता

(42)

जिहिं घट मैं सन्सौ बसै, तिहिं घट राम न जोइ।
राम सनेही दास विच, त्रिणां न संचर होइ॥

शब्दार्थ – जिहिं = जिस। घट = हृदय। संसौ = संशय, भ्रम। तिहिं = उस। घटि = हृदय में। राम न जोइ = राम को मत देखो। सनेही = प्रेमी। त्रिणां = तिनका। न संचर होइ = संचरित नहीं हो सकता, नहीं जा सकता है।

(43)

राम जपत दालिव भला, टूटी घर की छाँनि।
ऊँचे मन्दिर जालि दे, जहाँ भगति न सारंग पानि॥

शब्दार्थ – दलिद = दारिद्र्य, निर्धनता। छाँनि = छप्पर। मन्दिर = भवन। जालि दे = जला दे। सारंगपानि = विष्णु भगवान् (परमात्मा)।

(44)

कबीर मधि अंग जे को रहै, तौ तिरत न लागै बार।
दुइ दुइ अंग सूँ लाग करि, डूबत है संसार॥

शब्दार्थ – मधि अंग = मध्यम मार्ग, सच्चा समन्वय का मार्ग, परस्पर विरोधी मत – आग्रहों को त्याग कर सम्पूर्ण सत्य को समाविष्ट करने वाला बीच का मार्ग। जे को = जो कोई (जिस किसी का)। तिरत = पार होने में, मुक्त होने में। बार = देर। दुइ-दुइ = दोनों-दोनों (दो परस्पर विरोध मार्गों)। सूँ = से।

(45)

हिंदू मुये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुह मैं कदे न जाइ॥

शब्दार्थ – मुवे = मर गये। दुह = दोनों। कदे = कभी।

(46)

पांडल पंजर मन भवर, अरथ अनूपम बास।
रांम नांम सींच्या अंमी, फल लागा बेसास॥

शब्दार्थ – पांडल = पाटल > पाडर एक प्रकार का वृक्ष। पंजर = पिंजड़ा, ढाँचा अर्थात् शरीर। मन-भवर = मन रूपी भौंरा। अनूपम = अद्भुत, अद्वितीय। बास = सुगन्ध। राम-नाम-अमीं = राम-नाम रूपी अमृत से।

(47)

सात समन्द की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ॥

शब्दार्थ – समन्द = समुद्र (प्राचीनकाल से ही सात समुद्रों के अस्तित्व की जनश्रुति चली आ रही है। परन्तु इसके नामों में भिन्नता है। जायसी ने पद्मावत में जिन सात सागरों का उल्लेख किया है उनके नाम हैं – क्षर समुद्र, क्षीर समुद्र, दधि समुद्र, उदधि समुद्र, सुरा समुद्र, किला-किला समुद्र, मानसरोवर समुद्र। पालि भाषा की जातक कथाओं में इन समुद्रों का वर्णन है – खुरमाल, दधिमाल, अग्गी माल, कुसमाल, नल माल तथा बड़भामुख समुद्र।) मसि = स्याही। लेखनि = कलम। बनराइ = वनराजि, वन समूह।

(48)

खूँदन तौ धरती सहै, बाढ़ सहै बनराइ।
कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सह्या न जाइ॥

शब्दार्थ – खूँदन = पैरों से कुचला जाना। बनराइ = वनराजि, वन समूह।

(49)

सतगुर ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि, देह द्रपन करै सोइ॥

शब्दार्थ – सिकलीगर = शान रखने वाला। मसकला = पत्थर का गोल पहिया जिससे कुंठित हथियार पर शान रखी जाती है।

(50)

जीवन थैं मरिबों भलौ, जौ मरि जानैं कोइ।
मरनैं पहली जे मरे, तौ कलि अजरावर होइ॥

शब्दार्थ – थैं = से। मरि जानैं = मरना जानता हो (जो वास्तविक मरण से परिचित है। शरीर छोड़ना मृत्यु नहीं है क्योंकि यदि आसक्ति बनी रहती है तो पुनः जन्म लेना पड़ेगा फिर मृत्यु होगी अत: निष्काम और अनासक्त हो जाना ही सच्चा मरण है क्योंकि फिर दोबारा मृत्यु की आशंका मिट जाती है अत: ऐसा सच्चा मरण तो जीवन से भी अच्छा है।) मरनैं = मृत्यु (शरीर छूटने वाली

मौत)। कलि = कलियुग में। अजरावर = अजर-अमर-जरा (बुढ़ापा) एवं मृत्यु से परे। मरने से पहले जो मर जाते हैं – से तात्पर्य है – जो जीति रहते हुए भी निष्काम एवं अनासक्त हो जाते हैं।

(51)

ऐसा कोई नां मिले, अपना घर देइ जराइ।
पंचूँ लरिका पटिक करि, रहै राम ल्यौ लाइ॥

शब्दार्थ – 'अपना घर देइ जराइ' = अपना घर जला दे, सांसारिक माया-मोह के बन्धनों को नष्ट कर दे। 'पंचूँ लरिका पटिक करि' = पाँचों लड़कों को पटककर-फेंककर – पाँचों इन्द्रियों की अधीनता को त्यागकर। 'रहै राम ल्यौ लाइ' = राम से ध्यान लगा ले। ब्रह्म में लीन हो जाय।

(52)

कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार।
ग्यांन षड़ग गहि काल सिरि, भली मचाई रार॥

शब्दार्थ – घोड़ा प्रेम का = भगवत्-प्रेम ही घोड़ा है (रूपक)। 'चेतनि चढ़ि असवार' = चैतन्य आत्मा ही उस पर चढ़ने वाला सवार है (रूपक)। ग्यांन-खड्ग गहि = ज्ञान-रूपी तलवार लेकर (रूपक)। काल-सिरि = काल (मृत्यु) के सिर पर। भली मचाई रार = अच्छी लड़ाई लड़ी, प्रहार किये।

(53)

जो पहर्‌या सो फाटिसी, नांव धर्‌या सो जाइ।
कबीर सोइ तत्त गहि, जो गुरि दिया बताइ॥

शब्दार्थ – जो फाटिसी = जो (वस्त्र) पहनता है वह फटेगा ही (शरीर की ओर संकेत है)। 'नांव धर्‌या सो जाइ' = (इस शरीर का) जो नाम रखा गया है, वह भी एक दिन (शरीर छूटने के साथ) चला जायेगा (क्योंकि आत्मा का तो कोई नाम नहीं होता)। तत्त = तत्त्व, (परमात्मा)। गहि = पकड़, ग्रहण कर – कबीरदास कहते हैं कि तू उसी तत्त्व को पकड़ जो तुझे गुरु ने बता दिया है।

(54)

कबीर लहरि समन्द की, मोती बिखरे आइ।
बगुला मंझ न जांणई, हंस चुणे चुणि खाइ॥

शब्दार्थ – लहरि समन्द की = समुद्र की लहर, सद्गुरु की कृपा या प्रभु कृपा । मोती = उपदेश रूपी मोती, भक्ति रूपी मोती । मंझ = मंद, मूढ़, अज्ञानी । न जांणई = नहीं जानता । हंस = भक्त या जीवन्मुक्त पुरुष रूपी हंस ।

(55)

ज्यूँ नैनूँ मैं पूतली, त्यूँ खालिक घट माँहि ।
मूरिख लोग न जांणहीं, बाहरि ढूँढण जांहि ॥

शब्दार्थ – नैनूं = नेत्रों (राजस्थानी भाषा का प्रभाव) । खालिक खलक (संसार) का मालिक (परमात्मा) । घट माँहि = हृदय में ।

(56)

लोच विचारा नींदई, जिनह न पाया ग्यांन ।
रांम नांव राता रहै, तिनहूँ न भावै आंन ॥

शब्दार्थ – नींदई = निन्दा करते हैं (बेचारे लोग दूसरों की निन्दा करते हैं) जिनह = जिन्होंने ज्ञान नहीं पाया, जो अज्ञानी हैं) । नांव = नाम । राता = अनुरक्त । आंन = अन्य दूसरी बात (जो राम के नाम में अनुरक्त हैं, उन्हें अन्य कोई बात अच्छी ही नहीं लगती तो फिर किसी की निन्दा क्यों करेंगे ।)

(57)

हरिया जाँणै रूँषड़ा, उस पाणीं का नेह ।
सूका काठ न जांणई, कबहू बूठा मेह ॥

शब्दार्थ – हरिया = हरा । रूँषड़ा = वृक्ष । उस पाणीं का नेह = वर्षा के जल का प्रेम । बूठा = बरसा । मेह = वर्षा का जल ।

(58)

जालौं इहै बड़पणां, सरलै पेड़ि खजूरि ।
पंखी छांह न बीसवैं, फल लागैं बे दूरि ॥

शब्दार्थ – इहै = इस । बड़पणां = बड़प्पन (बड़े होने का अभिमान) । 'सरलै पेड़ि खजूर' = खजूर, सीधा चला गया ऊँचा वृक्ष । बीसवैं = बैठ पाते हैं । बे = वे ।

(59)

आगैं आगैं दौं जलैं, पीछैं हरिया होइ।
बलिहारी ता विरष की, जड़ काट्यां फल होइ॥

शब्दार्थ – दौ = दावाग्नि। हरिया = हरा-भरा। विरष = वृक्ष। काट्यां = काटने पर।

(60)

आदि मधि अरु अन्त लौं, अबिहड़ सदा अभंग।
कबीर उस करता की, सेवग तजै न संग॥

शब्दार्थ – आदि = आरम्भ। मधि = मध्य, बीच। लौं = तक। अबिहड़ = अखण्ड, अनश्वर। अभंग = अखण्ड। सेवग = सेवक।

पद

(1)

दुलहनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आये हो राजा रांम भरतार॥
तन रत करि मैं मन रत करिहू, पंचतत्त बराती।
रांमदेव मोरैं पाँहुनैं आये, मैं जोवन मैं माती॥
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार।
रांमदेव संगि भांवरी लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमार॥
सुर तेतीसूँ कौतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी।
कहै कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी॥

शब्दार्थ – दुलहनीं = आत्मा का प्रतीक। मंगलचार = विवाहोत्सव के अवसर पर गाये जाने वाले आनन्द-गीत। रत = (राम में) अनुरक्त। पंचतत्त = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश जिनसे बना यह शरीर राम-मिलन का माध्यम और साधन है। इसीलिए पंचतत्त्वों को बराती कहा गया है। पाँहुनैं = मेहमान-अतिथि। माती = उन्मत्त। सरीर-सरोवर = नाभि (शरीर में नाभि स्थान को उसका सरोवर कहते हैं। नाभि स्थान में मणिपूरक चक्र होता है। सरोवर हृदय का प्रतीक भी माना जा सकता है। उस स्थिति में शरीर के सरोवर मन को यज्ञ की वेदी बनाऊँगी – ऐसा भाव व्यक्त होगा। भांवरि = सप्त पदी, वर-कन्या मण्डप में विवाह-संस्कार के समय यज्ञ-वेदी के सात चक्कर लगाते हैं। इसी को भाँवर कहते हैं। कौतिग = कौतुक, तमाशा (कई टीकाकारों ने 'कौतिग' का अर्थ कौटिक 'करोड़ों' किया है। परन्तु कौतिक का अर्थ 'कौतुक' ही उपयुक्त है क्योंकि ब्रज

बोली में आज भी कौतिक या कौतिग का प्रयोग इसी अर्थ में होता है।) मुनियर = मुनिवर (मुनिवर > मुनिअर > मुनियर)। सहस अठ्यासी = अठासी हजार (पौराणिक परम्परा से मुनियों की संख्या अठासी हजार है जिनको सूतजी कथाएँ सुनाते हैं)। अविनासी पुरिष = परमात्मा जो अनश्वर पुरुष (आत्मा) है।

(2)

नरहरि सहजैं हीं जिनि जांना।
गत फल फूल तत तर पलव, अंकूर बीज नसांना॥
प्रगट प्रकास ग्यांन गुरगमि थैं, ब्रह्म अगानि प्रजारी।
ससि हरि सूर दूर दूरंतर लागी जोग जुग तारी॥
उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेर डंड सरपूरा।
गगन गरजि मन सुनि समाँनां, बाजे अनहद तूरा॥
सुमति सरीर कबीर बिचारी, त्रिकुटी संगम स्वामी।
पद आनन्द काल थैं छूटैं, सुख मैं सुरति समांनीं॥

शब्दार्थ – नरहरि = नृसिंह भगवान – कबीर का तात्पर्य निराकार ब्रह्म से है। सहजैं = सहज रूप में, आत्म-स्वभाव से। जिनि = जिन्होंने। तत = वृक्ष का सारभाग-गूदा। तर = तरु-वृक्ष। पलव = पल्लव, पत्ते। अंकूर बीज नसांना = बीज-अंकुर तक नष्ट हो गया। ब्रह्म को जिन्होंने सहज रूप में जान लिया उनके लिए संसार रूपी वृक्ष के फल-फूल गूदा, पत्ते सभी समाप्त हो गये – यहाँ तक कि बीज तथा अंकुर तक नष्ट हो गया। माया एवं अज्ञान जनित संसार समूल नष्ट हो जाता है। गुर गमि थैं = गुरु की पहुँच से – सद्गुरु के उपदेश से। गुरु के उपदेश से ज्ञान का प्रकाश प्रकट हुआ तथा ब्रह्म-ज्योति प्रज्वलित हो गई। ससि हरि = शशधर – चन्द्रमा-ब्रह्मरन्ध्र में स्थिति चन्द्रमा जिससे अमृत का स्राव होता है। सूर = सूर्य-मूलधार पद्म – या मूलाधार में स्थित सूर्य जो अमृत का शोषण करता तथा मनुष्य शरीर को वृद्धावस्था की ओर ले जाता है। 'लागी जोग जुग तारी' = योग-साधना में समाधि लग गई। चन्द्रमा और सूर्य दूर से और भी दूर हो जाते हैं, जब कुंडलिनी जाग्रत् हो जाने से दोनों के बीच समाधि की ताली लग जाती है। इड़ा – (चन्द्र नाड़ी) तथा पिंगला (सूर्य नाड़ी) नाड़ियों का प्रवाह रुक जाता है – सुषुम्ना का मार्ग खुलवाता है जिससे ब्रह्मरन्ध के चन्द्र से होने वाला अमृत-प्रवाह पिंगला मार्ग से सूर्य तक नहीं पहुँचता। 'उलटे पवन चक्र षट बेधा' = पवन जो इड़ा पिंगला में प्रवाहित था उलटकर षट्चकों को बेधता तथा मेरुदण्ड (सुषुम्ना नाड़ी) के मार्ग को पूर्ण कर देता है। 'गगन गरजि मन सुनि समाँनां, बाजे अनहद तूरा' = मन सहस्रार चक्र (शून्य) में समा जाता है जहाँ मेघ-गर्जन की सी ध्वनि सुनाई पड़ती तथा अनहद नाद-रूपी तूर्य बजता है। तूरा = तूर्य, तुरही – एक बाजा। सुमति = सुबुद्धि। सरीर = इसी शरीर से – इसी जन्म में। त्रिकुटी = दोनों भौंहों के बीच का स्थान। संगम = इड़ा-पिंगला तथा सुषुम्ना का यहीं संगम होता है। यहीं से इड़ा – बायें नासिकारन्ध्र, पिंगला – दायें

नासिकारन्ध्र तथा सुषुम्ना सहस्रार चक्र की ओर चली जाती है। स्वामी = साधक कबीर इस त्रिकुटी का स्वामी है। यहीं आज्ञा-चक्र है। इसको पार करने पर कुंडलिनी सहस्रार चक्र में पहुँचती तथा ब्रह्मज्योति का दर्शन करती है। पद आनन्द = मोक्ष ही आनन्द का पद है। सुख मैं सुरति समांनीं = सुरति सुख में समा गई – अर्थात् समाधि अवस्था परमात्मा के सहज सुख में लीन हो गई।

(3)

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई॥
पहलैं पूत पीछें भई मांई, चेला कै गुरु लागै पाई।
जल की मछली तरवर ब्याई, पकरि बिलाई मुरगै खाई॥
बैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्ता कूँ लै गई बिलाई॥
तलिकर साषा ऊपरिकरि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल।
कहै कबीर या पद को बूझै, तांकू तीन्यूँ त्रिभुवन सूझै॥

शब्दार्थ – ठाड़ा = खड़ा हुआ। सिंघ (सिंह) = ज्ञान। गाई (गाय) = माया। पूत (पुत्र) = जीवात्मा। मांई (माता) = माया। चेला (शिष्य) = चित्त। गुरु (सद्गुरु) = प्राण। जल की मछली = मूलाधार में स्थिति कुंडलिनी। तरवर-ब्याई = सुषुम्ना या मेरुदण्ड पर ब्याई यानी बच्चे को जना। बिलाई (बिल्ली) = माया। मुरगै (मुरगे ने) = जीवात्मा ने। बैलहिं = बैल को। गूंनि = बैल या गधे आदि पर सामान भरने की लादी (गौन) विशेष जिसमें दोनों ओर सामान भरा जाता है। कुत्ता = पापी मन। बिलाई = माया। तलिकर = नीचे ओर। मूल = जड़ कुंडलिनी शक्ति। शाखा = अज्ञान, माया। फूल = सहस्रार चक्र। तीन्यूँ = तीनों। त्रिभुबन = तीनों लोक।

(4)

हँम तौ एक एक करि जांनां।
दोहू कहैं तिनहीं कौं दोजग, जिन नाहिंन पहिचांनां॥
एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भांड़ै, एक ही सिरजनहारा॥
जैसें बाढ़ी काष्ट ही काटै, अगिनि न काटै कोई।
सब घटि अंतरि तूंही व्यापक, धरैं सरूपैं सोई॥
माया मोहे अर्थ देख करि, काहै कूँ गरबांनां।
निरभै भया कछू नहिं ब्यापै, कहै कबीरा दिवांनां॥

शब्दार्थ – दोजग = दोज़ख (फारसी शब्द) नरक। बाढ़ी = बढ़ई। 'धरैं सरूपैं सोई' = वह (परमात्मा) ही (विभिन्न) रूप धारण किये हुए है। अर्थ = इन्द्रियों के विषय, धन। काहे कूँ = किसलिए।

गरबांनां = गर्वित हुआ, घमण्ड किया। निरभै = निर्भय, निडर। कछू नहीं ब्यापै = किसी का प्रभाव नहीं पड़ता, संसार के विषय प्रभावित नहीं करते। दिवांनां = (प्रभु के प्रेम में) पागल, उन्मत्त।

(5)

जागि रे जीव जागि रे।
चोरन कौ डर बहुत कहत हैं, उठि उठि पहरैं लागि रे॥
ररा करि टोप ममां करि बखतर, ग्यान रतन करि षाग रे।
ऐसै जौ अजराइल मारै, मस्तिक आवै भाग रे॥
ऐसी जागणीं जे को जागै, तौ हरि देइ सुहाग रे॥
कहै कबीर जाग्या ही चाहिये, क्या गृह क्या बैराग रे॥

शब्दार्थ – र रा = राम नाम का 'र' वर्ण। म मां = राम नाम का 'म' वर्ण। बखतर = लौह-वस्त्र जिसे सैनिक युद्धस्थल में शरीर की रक्षार्थ पहनते थे। खाग = खड्ग, तलवार। अजराइल = स्थायी रूप से। भाग = भाग्य-सौभाग्य। जागणीं = जाग्रति।

(6)

लोका मति के भोरा रे।
जौ कासी तन तजै कबीरा, तौ रामहि कहा निहोरा रे॥
तब हम वैसे अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा।
ज्यूँ जल मैं जल पैसि न निकसै, यूँ दुरि मिलै जुलाहा॥
रांम भगति परि जाकौ हित चित, ताकौ अचिरज काहा।
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीतें जाइ जुलाहा॥
कहै कबीर सुनहु रे संतो भ्रमि परे जिनि कोई॥
जस कासी तस मगहर ऊसर, हिरदै राम सति होई॥

शब्दार्थ – लोका = लोग। मति के भोरा = अज्ञान पूर्ण, बुद्धि वाले। निहोरा = अहसान, आभार। लाहा = लाभ। पैसि = प्रवेश कर, मिलकर। दुरि = ढलकर। हित = प्रेम। चित = ध्यान। काहा = क्या। प्रसाद = कृपा। जिनि = नहीं, मत। मगहर = एक स्थान जिसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वहाँ शरीर छोड़ने पर नरक मिलता है। सति = सत्य, सत्तावान।

❖❖❖

मलिक मुहम्मद जायसी

पद्मावत

नागमती वियोग खण्ड

(1)

नागमती चितउर पँथ हेरा। पिउ जो गए फिरि कीन्ह न फेरा॥
नागरि नारि काहुँ बस परा। तेइँ बिमोहिं मोसौं चितु हरा॥
सुआ काल होइ लै गा पीऊ। पिउ नहिं लेत लेत बरु जीऊ॥
भएउ नरायन बावन करा। राज करत बलि राजा छरा॥
करन बान लीन्हेउ कै छंदू। भारथ भएउ झिलमिल आनंदू॥
मानत भोग गोपिचँद भोगी। लै उपसवा जलंधर जोगी॥
लै कान्हहि भा अकरुर अलोपी। कठिन बिछोउ, जिऐ किमि गोपी॥

सारस जोरी कौन हरी मारि गएउ किन खग्गि।
झु रि झु रिपाँजरि धनि भई बिरह कै लागि अग्गि॥

शब्दार्थ – बान = कसौटी पर कसने का रंग या रेखा। भारथ भएउ झिलमिल आनंदू = अर्जुन को कर्ण के कवच से आनन्द हुआ। गोपिचँद = गोपीचन्द बंगाल के राजा माणिकचन्द्र के और उनकी रानी मैनावती के पुत्र कहे जाते हैं। माता मैनावती ने पुत्र को गुरु जालंधरनाथ से दीक्षा दिलवा कर योग मार्ग में प्रवृत्त किया। जलंधर जोगी = जालंधरनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के गुरुभाई थे और मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ के गुरु थे। खग्गि = खगी, सारस की जोड़ी में उसकी मादा।

(2)

पिउ बियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा तस बोलै पिउ पीऊ॥
अधिक काम दगधै सो रामा। हरि जिउ लै सो गएउ पिउ नामा॥
बिरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीज भीजि गई चोली॥
सखि हिय हेरि हार मैन मारी। हहरि परान तजै अब नारी॥
खिन एक आव पेट महँ स्वाँसा। खिनहि जाइ सब होइ निरासा॥
पौनु डोलावहिं सींचहिं चोला। पहरक समुझि नारि मुख बोला॥
प्रान पयान होत केइँ राखा। को मिलाव चात्रिक कै भाखा॥

आह जो मारी बिरह की आगि उठी तेहि हाँक।
हंस जो रहा सरीर महँ, पाँख जरे तन थाक॥

शब्दार्थ – मैन मारी = काम की मारी हुई, मदन की सताई हुई। इहरि = काँप कर। समुझि = सम्बुद्ध होकर, जागकर, होश में आकर। चात्रिक कै भाखा = चातक या पपीहे की बोली 'पिउ पिउ'। हंस जो रहा सरीर महँ = शरीर के भीतर जो जीवरूपी हंस था।

(3)

पाट महादेइ हिएँ न हारू। समुझि जीउ चित चेतु सँभारू॥
भँवर कँवल सँग होइ न परावा। सँवरि नेह मालति पहँ आवा॥
पीउ सेवाति सौं जैस पिरौती। टेकु पियास बाँधु जिय थीती॥
धरती जैस गँगन के नेहा। पलटि भरै बरखा रितु मेहा॥
पुनि बसंत रितु आव नवेली। सो रस सो मधुकर सो बेली॥
जनि अस जीउ करसि तूँ नारी। दहि तरिवर पुनि उठहिं सँभारी॥
दिन दस जल सूखा का नंसा। पुनि सोइ सरवर सोईं हंसा॥

मिलहिं जो बिछुरै साजना गहि गहि भेंट गहंत।
तपनि मिरगिसिरा जे सहहिं अद्रा ते पलुहंत॥

शब्दार्थ – पाट महादेइ = पट्ट महादेवी, पटरानी। थीती = स्थिति, मर्यादा, टेक। गँगन = आकाश, आकाश में एकत्र होने वाले मेघ। नंसा = नाश, हानि। साजना = पति। तपनि मिरगिसिरा = आर्द्रा नक्षत्र से पहले पन्द्रह दिन तक मृगशिरा नक्षत्र ज्येष्ठ शुक्ल में खूब तपता है, मृग दाह के बाद आर्द्रा आता है, उसी की ओर जायसी का संकेत है।

(4)

चढ़ा असाढ़ गँगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा॥
धूम स्याम धौरे घन धाए। सेत धुजा बगु पाँति देखाए॥
खरग बीज चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरिसै घन घोरा॥
अर्द्रा लाग बीज भूईं लेई। मोहि पिय बिनु को आदर देई॥
ओनै घटा आई चहुँ फेरी। कंत उबारु मदन हौं घेरी॥
दादुर मोर कोकिला पीऊ। करहिं बेझ घट रहै न जीऊ॥
पुख नछत्र सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाँह मँदिर को छावा॥

जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्ब।
कंत पियारा बाहिरें हम सुख भूला सर्ब॥

शब्दार्थ – बाजा = आ पहुँचा। अर्द्रा लाग = आर्द्रा लगना, आषाढ़ कृष्ण में आर्द्रा बरसता है, आर्द्रा में किसान भूमि में बीज बोने लगते हैं। ओनै = अवनता। पुख नछत्र = पुष्य नछत्र। गारौ = गौरव।

(5)

सावन बरिस मेह अति पानी। भरनि भरइ हौं बिरह झुरानी॥
लागु पुनर्बसु पीउ न देखा। भै बाउरि कहँ कंत सरेखा॥
रकत क आँसु परे भुइँ टूटी। रेंगि चली जनु बीर बहूटी॥
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियर भुइँ कुसुंभी तन चोला॥
हिय हिंडोल जस डोलै मोरा। बिरह झुलावै देइ झँकोरा॥
बाट असूझ अथाह गँभीरा। जिउ बाउर भा भवै भँभीरा॥
जग जल बूड़ि जहाँ लगि ताकी। मोर नाव खेवक बिनु थाकी॥

परबत समुँद अगम बिच बन बेहड़ घन ढँख।
किमि करि भेंटौं कंत तोहि ना मोहि पाँव न पंख॥

शब्दार्थ – मेह = मेघ। भरनि = मूसलाधार वृष्टि। पुनर्बसु = पुनर्वसु नक्षत्र। भँभीरा = एक पतिंगा, जो वर्षा के अन्त में प्रायः पानी के किनारे घास के ऊपर दिखाई देता पड़ता है। यह अपने पैरों को हिला कर 'भन भन' शब्द करता है।

(6)

भर भादौं दूभर अति भारी। कैसें भरौं रैनि अँधियारी॥
मँदिर सून पिय अनतै बसा। सेज नाग भै धै धै डसा॥
रहौं अकेलि गहें एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी॥
चमकि बीज घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा॥
बरिसै मघा झँकोरि झँकोरी। मोर दुइ नैन चुवहिं जसि ओरी॥
पुरबा लाग पुहुमि जल पूरी। आक जवास भई हौं झूरी॥
धनि सूखी भर भादौं माहाँ। अबहूँ आइ न सींचति नाहाँ॥

जल थल भरे अपूरि सब गँगन धरति मिलि एक।
धनि जोबन औगाह महँ दे बूड़त पिय टेक॥

शब्दार्थ – धै धै डसा = दौड़ दौड़ कर डसती है। मघा = भाद्र पद कृष्ण पक्ष में मघा नक्षत्र बरसता है। पुरवा = पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र जो भाद्र पद शुक्ल पक्ष में लगता है। आक जवास = ये दोनों वर्षा में निष्पन्न हो जाते हैं।

(7)

लाग कुवार नीर जग घटा। अबहुँ आउ परभुमि लटा॥
तोहि देखे पिउ पलुहै काया। उतरा चित्त फेरि करु माया॥

उए अगस्ति हस्ति घन गाजा। तुरै पलानि चढ़े रन राजा॥
चित्रा मिंत मीन घर आवा। कोकिल पीउ पुकारत पावा॥
स्वाति बुंद चातिक मुख परे। सीप समुंद्र मोंति लै भरे॥
सरवर सँवरि हंस चलि आए। सारस कुरुरहिं खंजन देखाए॥
भए अवगास कास बन फूले। कंत न फिरे बिदेसहि भूले॥

बिरह हस्ति तन सालै खाइ करै तन चूर।
बेगि आइ पिय बाजहु गाजहु होइ सदूर॥

शब्दार्थ – लटा = घट गया, क्षीण हो गया। उए अगस्ति = हस्त नक्षत्र में अगस्त्य तारा दिखाई पड़ता है, हस्त नक्षत्र में छील के जितना बादल भी दिखाई पड़े तो खूब गरजता-बरसता है। पलानि = पलान रखना, जीन रखना। चित्रा मिंत मीन घर आवा = उत्तरा, हस्त, चित्रा ये कुआर के नक्षत्र हैं, चित्रा का मित्र चन्द्रमा है, वह मीन राशि में कुआर की पूर्णिमा से एक दिन पहले आ जाता है। अवगास = अवकाश। ओगास = जगह, स्थान, मैदान। बाजहु = पहुँचो।

(8)

कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल हौं बिरहैं जारी॥
चौदह करा कीन्ह परगासू। जानहुँ जरें सब धरति अकासू॥
तन मन सेज करै अगिडाहू। सब कहँ चाँद मोहिं होइ राहू॥
चहूँ खंड लागै अँधियारा। जौं घर नाहिंन कंत पियारा॥
अबहूँ निठुर आय एहिं बारा। परब देवारी होइ संसारा॥
सखि झूमक गावहिं अंग मोरी। हौं झूरौं बिछुरी जेहिं जोरी॥
जेहि घर पिउ सो मुनिवरा पूजा। मो कहँ बिरह सवति दुख दूजा॥

सखि मानहिं तेवहार सब गाइ देवारी खेलि।
हौं का खेलौं कंत बिनु तेहिं रही छार सिर मेलि॥

शब्दार्थ – मुनिवरा पूजा = कार्तिक की पूर्णिमा को सौभाग्यवती स्त्रियाँ मुनिवरों अर्थात् सप्तऋषियों का पूजन करती हैं।

(9)

अगहन देवस घटा निसि बाढ़ी। दूभर दुखसो जाइ किमि काढ़ी॥
अब धनि देवस बिरह भा राती। जरैं बिरह ज्यों दीपक बाती॥
काँपा हिया जनावा सीऊ। तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ॥
घर घर चीर रचा सब काहूँ। मोर रूप रँग लै गा नाहूँ॥
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै फिरै रँग सोई॥

सियरि अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलगि सुलगि दगधै भै छारा॥
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोबन जनम करै भसमंतू॥

पिउ सौं कहेउ सँदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग।
सो धनि बिरहें जरि गई तेहिक धुआँ हम लाग॥

शब्दार्थ – देवस बिरह भा राती = बाला के विरह की आग से दिन का रंग काला पड़कर वह रात में मिल गया है। वह जैसी रात में जलती थी, वैसी ही दिन में भी जलने लगी है। सँदेसरा = संदेसड़ा, सन्देश।

(10)

पूस जाड़ थरथर तन काँपा। सुरुज बड़ाइ लंक दिसि तापा॥
बिरह बाढ़ि भा दारुन सीऊ। कँपि कँपि मरौं लेहि हरि जीऊ॥
कंत कहाँ हौं लागौं हियरें। पंथ अपार सूझ नहिं नियरें॥
सौर सुपेती आवै जूड़ी। जानहुँ सेज हिवंचल बूड़ी॥
चकई निसि बिछुरै दिन मिला। हौं निसि बासर बिरह कोकिला॥
रैनि अकेलि साथ नहिं सखी। कैसें जिऔं बिछोही पंखी॥
बिरह सैचान भँवै तन चाँड़ा। जीयत खाइ मुएँ नहिं छाँड़ा॥

रकत ढरा माँसू गरा हाड़ भए सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई आइ समेटहु पंख॥

शब्दार्थ – लंक दिसि = लंका की दिशा, दक्षिण दिशा। सैचान = बाज। ररि = रटकर, रो रोकर।

(11)

लागेउ माँह परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला॥
पहल पहल तन रुई जो झाँपै। हहलि हहलि अधिकौ हिय काँपै॥
आइ सूर होइ तपु रे नाहाँ। तेहि बिनु जाड़ न छूटै माहाँ॥
एहि मास उपजै रस मूलू। तूँ सो भँवर मोर जोबन फूलू॥
नैन चुवहिं जस माँहुट नीरू। तोहि जल अंग लाग सर चीरू॥
टूटहिं बुंद परहिं जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला॥
केहिक सिंगार को पहिर पटोरा। गियं नहिं हार रही होइ डोरा॥

तुम्ह बिनु कंता धनि हरुई तन तिनुवर भा ढोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै चहै उड़ावा झोल॥

शब्दार्थ – पाला = बरफ, ठण्ड। जड़काला = जाड़े का समय। पहल पहल = शरीर का पहलू-पहलू, अंग अंग अथवा रुई का पहल-पहल। हहलि = हड़कना, हहरना, काँपना, थरथराना। रस मूलू = माघ में उस रस का आरम्भ होता है, जो बसन्त में वनस्पतियों में दिखाई पड़ता है इसीलिए माघ शुक्ल पंचमी बसन्त का जन्मदिन माना जाता है। माँहुट = माघ महीने का मेह। झोला = जाड़े में चलने वाली अत्यन्त ठण्डी हवा, जिसके झोंके गेहूँ आदि के पौधों को सूखा डालते हैं। हरुई = हल्की। झोल = भस्म या राख।

(12)

फागुन पवन झँकोरै बहा। चौगुन सीउ जाइ किंमि सहा॥
तन जस पियर पात भा मोरा। बिरह न रहै पवन होइ झोरा॥
तरिवर झरै झरै बन ढाँखा। भइ अनपत्त फूल फरि साखा॥
करिन्ह बनफति कीन्ह हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू॥
फाग करहि सब चाँचरि जोरी। मोहिं जिय लाइ दीन्हि जसि होरी॥
जौं पै पीयहि जरत अस भावा। जरत मरत मोहि रोस न आवा॥
रातिहु देवस इहै मन मोरें। लागौं कंत थार जेउँ तोरें॥

यह तन जारौं छार वै, कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरै जहँ पाउ॥

शब्दार्थ – फागुन पवन = यह फागुन की फगुनहटा वायु है, जो बहुत तेज बर्फीली होती है। झोरा = झोरना, पेड़ के पत्ते गिराकर उसे मुण्डा कर देना। चाँचरि = शृंगार प्रधान एक नृत्य और गीत जो विशेषतः फागुन में गाया जाता है। थार = थाल (थाल जैसा हृदय)।

(13)

चैत बसंता होइ धमारी। मोहिं लेखें संसार उजारी॥
पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौ बन ढारै॥
बूड़ि उठे सब तरिवर पाता। भीज मंजीठ टेसू बन राता॥
भौंरैं आँव फरें अब लागे। अबहुँ सँवरि घर आउ सभागे॥
सहस भाव फूली बनफती। मधुकर फिरै सँवरि मालती॥
मो कहँ फूल भए जस काँटे। दिस्टि परत तन लागहिं चाँटे॥
भर जोबन एहु नारँग साखा। सोवा बिरह अब जाइ न राखा॥

घिरिनि परेवा आव जस आइ परहु पिय टूटि।
नारि पराएँ हाथ है, तुम्ह बिनु पाव न छूटि॥

शब्दार्थ – धमारी = होली का एक राग और उत्सव। नारँग = स्तन। साखा = शाखा, शरीर। सोवा = सुग्गा रूपी विरह या कामाग्नि।

(14)

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोला चीर चँदन भौ आगी॥
सूरुज जरत हिवंचल ताका। बिरह बजागि सौंह रथ हाँका॥
जरत बजागिनि होउ पिय छाँहाँ। आइ बुझाउ अँगारन्ह माहाँ॥
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि सों करु फुलवारी॥
लागिउँ जरे जरे जस भारू। बहुरि जो भूँजसि तजौं न बारू॥
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ होइ बिहराई॥
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दीस्टि दवँगरा मेरवहु एका॥

कँवल जो बिगसा मानसर छारहिं मिलै सुखाइ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै जौं पिय सींचहु आइ॥

शब्दार्थ – चीर चँदन = चन्दन चीर, चंदनौटा। बहुरि = 1. फिर, 2. जौ की भुनी हुई खीलें, भुना हुआ अन्न या चबेना। बिहराई = बिहराना, वियुक्त होना, अलग होना, टूट जाना। दवँगरा = असाढ़ का पहला पानी। छारहिं मिलै सुखाइ = कमल धूप में गर्म रहता है जैसे ही पहला दवँगरा पड़ता है उसके पत्ते जल जाते हैं और जड़ ताल की मिट्टी में पड़ी रहती है। जब शरद् आती है तो फिर पत्तियाँ फूट निकलती हैं।

(15)

जेठ जरै जग बहै लुवारा। उठै बवंडर धिकै पहारा॥
बिरह गाजि हनिवंत होइ जागा। लंका डाह करै तन लागा॥
चारिहुँ पवन झंकोरै आगी। लंका डाहि पलंका लागी॥
दहि भइ स्याम नदी कालिंदी। बिरह कि आगि कठिन असि मंदी॥
उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ मरौं दुख बाँधी॥
अधजर भई माँसु तन सूखा। लागेउ बिरह काग होइ भूखा॥
माँसु खाइ सब हाड़न्ह लागा। अबहूँ आउ आवत सुनि भागा॥

परबत समुँद मेघ ससि दिनकर सहि न सकहिं यह आगि।
मुहमद सती सराहिऐ जरै जो अस पिय लागि॥

शब्दार्थ – लुवारा = तप्त वायु, लू। बवंडर = वातमण्डल। चारिहुँ पवन = पुरवैया, पछिहवाँ, उतरावा, दखिनाहा। लंका डाहि पलंका लागी = हनुमान ने जिस अग्नि से लंका जलाई थी वह सब लंका को जलाकर नागमती के पलंग को जला रही है, अथवा पलंका लंका से भी दूर एक द्वीप समझा

जाता है, इलोरा में कैलास मन्दिर के दोनों ओर दो गुफाएँ लंका पलंका कहलाती हैं, तात्पर्य यह है कि वह अग्नि लंका को जलाकर पलंका तक जा पहुँची। मंदी = मंदी आँच, जैसे तुष की अग्नि होती है। मंदी होने पर भी वह बड़ी कठिन समझी जाती है। दुख बाँधी = दु:ख की ऐंठन। बाँधी = ऐंठन, अंगों का टूटना, मुड़ना।

(16)

तपै लाग अब जेठ असाढ़ी। भै मोकहिं यह छाजनि गाढ़ी॥
तन तिनुवर भा झूरौं खरी। मैं बिरहा आगरि सिर परी॥
साँठि नाहिं लगि बात को पूँछा। बिनु जिउ भएउ मूँज तन छूँछा॥
बंध नाहिं औ कंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई॥
ररि दूबरि भईं टेक बिहूनी। थंभ नाहि उठि सकै न थूनी॥
बरसहिं नैन चुअहिं घर माहाँ। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाँहाँ॥
कोरे कहाँ ठाट नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा॥

अबहूँ दिस्टि मया करु छान्हिन तजु घर आउ।
मंदिल उजार होत है नव कै आनि बसाउ॥

शब्दार्थ – जेठ असाढ़ी = कठिनतम गर्मी के दिन। छाजनि = त्वचा का एक रोग, जिसमें बड़ी जलन होती है। गाढ़ी = कष्टदायक, दु:सह। तिनुवर = तनुवर, पतला अथवा तिनकों का ढेर। आगरि = खान, आकर अथवा अर्गला, विरह की अर्गला मेरे सिर पड़ी है। साँठि = पूँजी, ठिकाना। बंध = बंधु, आत्मीय। कंध = स्कन्ध, कन्धा, टेक, सहारा। ररि = रो-रोकर। छाजन = वस्त्र। छान्हिन = छान-छप्पर, विजन।

(17)

रोइ गँवाएउ बारह मासा। सहस सहस दुख एक एक साँसा॥
तिल तिल बरिस बरिस बरु जाई। पहर पहर जुग जुग न सिराई॥
सो न आउ पिउ रूप मुरारी। जासों पाव सोहाग सो नारी॥
साँझ भए झुरिझुरि पँथ हेरा। कौनु सो घरी करै पिउ फेरा॥
दहि कोइल भै कंत सनेहा। तोला माँस रहा नहिं देहा॥
रकत न रहा बिरह तन गरा। रती रती होइ नैनन्हि ढरा॥
पाव लागि चेरी धनि हाहा। चूरा नेहु जोरु रे नाहा॥

बरिस देवस धनि रोइ कै हारि परी चित झाँखि।
मानसु घर घर पूँछि कै पूँछै निसरी पाँखि॥

शब्दार्थ – सिराई = सिराना, बीतना, समाप्त होना, अन्त होना। रूप मुरारी = रूप के कृष्ण। झुरि झुरि = झरना, याद करना, चिन्तन करना। गरा = निचुड़ गया, गारना = निचोड़ना, छानना। रती रती = रत्ती रत्ती, रक्त की बूँदें लाल रंग की रत्ती बनकर मानो बिखर गईं। झाँखि = विलाप करना, संतप्त होना, संताप करना।

(18)

भई पुछारि लीन्ह बनबासू। बैरिनि सवति दीन्ह चिल्हवाँसू॥
कै खर बान कसै पिय लागा। जौं घर आवै अबहूँ कागा॥
हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तहँ पठवौं कौनु परेवा॥
धौरी पंडुक कहु पिय ठाऊँ। जौं चित रोख न दोसर नाऊँ॥
जाहि बया गहि पिउ कँठ लवा। करे मेराउ सोई गौरवा॥
कोइलि भई पुकारत रही। महरि पुकारि लेहु रे दही॥
पियरि तिलोरी आव जलहंसा। बिरहा पैठि हिएँ कत नंसा॥

जेहि पंखी कहँ अढ़वौं कहि सो बिरह कै बात।
सोई पंखी जाइ डहि तरिवर होइ निपात॥

शब्दार्थ – पुछारि = 1. मोरनी, 2. पूछने वाली। चिल्हवाँसू = चिड़िया पकड़ने का फंदा। खरबानक = एक पक्षी। सै = साथ में। पिय लागा = अच्छा लगता है। हारिल = हरियल पक्षी। पंथ मैं सेवा = मार्ग की सेवा करने वाली हुई, मार्ग में टिक जाने वाली हुई। धौरी = धवर पक्षी, फाख्ता की एक जाति। पंडुक= पड़की। चित रोख = चितरोखा पक्षी, फाख्ता की एक जाति। बया = बया नाम का पक्षी। कँठ लवा = कँठलवा पक्षी, लावा की एक जाति। करे मेराउ = मिलाप करना, जोड़ा करना। गौरवा = गौरैया का नर, चिड़ा पक्षी। कोइलि = कोयली पक्षी। महरि = ग्वालिन चिड़िया, जो दही-दही बोलती है। पियरि = पीलक चिड़िया। तिलोरी = तेलिया मैना। जलहंसा = जल में क्रीड़ा करने वाले हंस। बिरहा = उड़ गया, चला गया। कतनंसा = कटनास पक्षी। अढ़वौं = अढ़वना, आज्ञा देना, कार्य में नियुक्त करना, काम में लगाना, आरम्भ करना। निपात = गिर जाना, नष्ट हो जाना, बिना पत्तों के हो जाना।

(19)

कुहुकि कुहुकि जसि कोइलि रोई। रकत आँसु घुँघुची बन बोई॥
पै करमुखी नैन तन राती। को सिराव बिरहा दुख ताती॥
जहँ जहँ ठाढ़ि होइ बनबासी। तहँ तहँ होइ घुँघुचिन्ह कै रासी॥
बुंद बुंद महँ जानहुँ जीऊ। कुंजा गुंजि करहिं पिउ पीऊ॥
तेहि दुख डहे परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे परभाते॥

राते बिंब भए तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गोहूँ॥
देखिअ जहाँ सोइ होइ राता। जहाँ सो रतन कहै को बाता॥

ना पावस ओहि देसरें ना हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा केहि सुनि आवहिं कंत॥

शब्दार्थ – कुंजा = वन में वृक्षों के कुंज या क्रौंच पक्षी। गुंजि = गूँज, प्रतिध्वनि। उठे परभाते = प्रातः प्रभातना, चमकना, चमक उठे।

❖❖❖

सूरदास

भ्रमरगीत

(1)

नीके रहियो जसुमति मैया।
आवैंगे दिन चारि पाँच में हम हलधर दोउ भैया॥
जा दिन तें हम तुमतें बिछुरे, काहु न कह्यौ 'कन्हैया'।
कबहुँ प्रात न कियो कलेवा, साँझ न पीन्ही धैया॥
बंसी बेनु सँभारि राखियो और अबेर सबेरो।
मति लै जाय चुराय राधिका कछुक खिलौनो मेरो।
कहियो जाय नन्दबाबा सों निपट बिठुर जिय कीन्हो।
सूर स्याम पहुँचाय मधुपुरी बहुरिसंदेश न लीन्हौं॥

शब्दार्थ – पीन्ही = पी। धैया = थन से सीधी छूटती सीधी धारा। मधुपुरी = मथुरा।

(2)

जीवन मुँहचाही को नीको।
दरस परस दिन रात करति है कान्ह पियारे पी को॥
नयनन मूँदि-मूँदि किन देखौ बंध्यो ज्ञान पोथी को।
आछे सुन्दर स्याम मनोहर और जगत सब फीको॥
सुनौ जोग को का लै कीजे जहाँ ज्यान है जी को?
खाटी मही नहीं रुचि मानै सूर खबैया घी को॥

शब्दार्थ – मुँहचाही = हिती, प्रिया। ज्यान = जियान, हानि।

(3)

आयो घोष बड़ो व्योपारी।
लादि खेप गुन ज्ञान-जोग की ब्रज में आन उतारी॥
फाटक दैकर हाटक माँगत, भोरै निपट सुधारी।
धुर ही तें खोटो खायो है लये फिरत सिर भारी॥
इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी?
अपनो दूध छाँड़ि को पीवै खार कूप को पानी।
ऊधो जाहु सबार यहाँ तें बेगि गहरु जनि लावौ।
मुँहमाँग्यो पैहो सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ॥

शब्दार्थ – खेप = माल का बोझ। फाटक = अनाज फटकने से निकला हुआ कदन्न, फटकन। सुधारी = समझकर। धुर = मूल, आरम्भ। डहकावै = सौदे में धोखा खाए, ठगाए। सबार = सवेरे। गहरु = विलम्ब, देर।

(4)

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
यह ब्योपार तिहारो ऊधौ ! ऐसोई फिरि जैहै॥
जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहै।
दाख छाँड़ि कै कटुक निंबौरी को अपने मुख खैहै ?
मूरी के पातन के केना को मुक्ताहल दैहै।
सूरदास प्रभु गुनहि छाँड़ि कै को निर्गुन निबैहै ?

शब्दार्थ – ठगौरी = ठगौने का सौदा। निंबौरी = नीम का फल। केना = सौदा, छोटा-मोटा साग, मूली आदि का बदला।

(5)

आए जोग सिखावन पाँड़े।
परमारथी पुराननि लादे ज्यों बनजारे टाँड़े।
हमरी गति पति कमलनयन की जोग सिखैं ते राँड़े।
कहौ मधुप, कैसे समायँगे एक म्यान दो खाँड़े॥
कहु षटपद, कैसै खैयतु है हाथिन के संग गाड़े।
काकी भूख गई बयारि भखि बिना दूध घृत माँड़े॥
काहे जो झाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डाँड़े।
सूरदास तीनों नहिं उपजत धनिया धान कुम्हाँड़े॥

शब्दार्थ – बनजारे टाँड़े = व्यापार का माल। गाड़े = गन्ने या चारे का कटा हुआ टुकड़ा। 'खैयतु है हाथिन के संग गाड़े' = हाथी के साथ गाँड़े खाना (कहावत) देखादेखी अनहोनी बात करना। झाला = झल्ल बकवाद। डाँड़े = दण्ड दिया। धनिया धान कुम्हाँड़े = धनिया, धान और कुम्हड़ा।

(6)

लरिकाई को प्रेम, कहौ अलि, कैसे करिके छूटत ?
कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित अब अंतरगति यों लूटत॥
चंचल चाल मनोहर चितवनि, वह मुसुकानि मंद धुन गावत।
नटवर भेस नंदनंदन को वह विनोद गृह वन तें आवत॥
चरनकमल की सपथ करति हौं यह सँदेस मोहि विष सम लागत।

सूरदास मोहि निमिष न बिसरत मोहत मूरति सोवत जागत ॥

शब्दार्थ – अंतरगति = चित्त की वृत्ति, मन ।

(7)

बिलग जनि मानहु, ऊधौ प्यारे !
वह मथुरा काजर की कोठरी जे आवहिं ते कारे ॥
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे ।
तिनके संग अधिक छबि उपजत कमलनैन मनिआरे ॥
मानहु नील माट तें काढ़े लै जमुना ज्यों पखारे ।
ता गुन स्याम भई कालिंदी सूर स्याम्गुन न्यारे ॥

शब्दार्थ – मनिआरे = सुहावना, रौनक । माट = मटका, मिट्टी का बरतन ।

(8)

अँखियाँ हरि-दरसन की भूखी ।
कैसे रहैं रूपरसराची ये बतियाँ सुनि रूखी ॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहिं झूखी ॥
अब इन जोग-सँदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी ॥
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी ।
सूर सिकत हटि नाव चलायो ये सरिता हैं सूखी ॥

शब्दार्थ – झूखी = संतप्त हुई। बारक = एक बार । पतूखी = पत्ते का दोना । 'हटि नाव चलायो ये सरिता हैं सूखी' = व्यर्थ बालू में नाव चलाते हो, ये सूखी नदियाँ हैं।

(9)

काहे को गोपीनाथ कहावत ?
जो पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत ?
सपने की पहिचानि जानि कै हमहिं कलेक लगावत ।
जौ पै स्याम कूबरी रीझे सो किन नाम धरावत ?
ज्यों गजराज काज के औसर औरे दसन दिखावत ।
कहन सुनन को हम हैं ऊधो सूर अनत बिरमावत ॥

शब्दार्थ – दसन दिखावत = कहावत : हाथी के दाँत खाने के कुछ और दिखाने के और । अनत = अन्यत्र ।

(10)

हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन बच क्रम नन्दनन्दन सों उर यह दृढ़ करि पकरी॥
जागत, सोबत, सपने सौंतुख कान्ह-कान्ह जक री।
सुनतहि जोग लगत ऐसो अलि ! ज्यों करुई ककरी॥
सोई व्याधि हमें लै आए देखी सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हैं लै दीजै जिनके मन चकरी॥

शब्दार्थ – हारिल = एक पक्षी जो प्रायः चंगुल में कोई लकड़ी या तिनका लिए रहता है। जक = रट, धुन। चकरी = चकई, चकई नामक खिलौने की तरह चंचल या घूमता हुआ।

(11)

निर्गुन कौन देस को बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी॥
को है जनक, जननी को कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसौ बरन, भेस है कैसौ केहि रस कै अभिलासी॥
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे ! कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठग्यो सो सूर सबै मति नासी॥

शब्दार्थ – गाँसी = गाँस या कपट की बात, चुभनेवाली बात।

(12)

बिन गोपाल बैरनि भईं कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं॥
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं।
पवन पानि घनसार संजीवनि दधिसुत किरन भानु भईं भुंजै।
ए, ऊधौ, कहियो माधव सों बिरह कदन करि मारत लुंजै।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं॥

शब्दार्थ – दधिसुत = चन्द्रमा। भुंजै = भूनती हैं। कदन = छुरी। बरन = वर्ण, रंग। गुंजैं = गुंजा, घुँघची।

(13)

हरि हैं राजनीति पढ़ि आए।
समुझी बात कहत मधुकर जो ? समाचार कछु पाए ?
इक अति चतुर हुते पहिले ही, अरु करि नेह दिखाए।

जानी बुद्धि बड़ी, जुवतिन को जोग-सँदेस पठाए ॥
भले लोग आगे के, सखि री ! परहित डोलत धाए ।
वे अपने मन फेरि पाइए जे हैं चलत चुराए ॥
ते क्यों नीति करत आपुन जे औरनि रीति छुड़ाए ?
राजधर्म सब भए सूर जहँ प्रजा न जाय सताए ॥

(14)

अति मलीन वृषभानुकुमारी ।
हरि-स्रमजल अंतरतनु भीजे ता लालच न धुआवति सारी ॥
अधोमुख रहति उरधनहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी ।
छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी ॥
हरी-संदेस सुनि सहज मृतक भई इक बिरहिनि दू जेअलि जारी ।
सूर स्याम बिनु यों जीवति है ब्रजवनिता सब स्यामदुलारी ॥

शब्दार्थ – गथ = पूँजी । चिहुर = चिकुर, बाल ।

(15)

ऊधो ! मन नाहीं दस बीस ।
एक हुतो सो गयो हरि के संग, को अराध तुव ईस ?
भईं अति सिथिल सबै माधव बिनु जथा देह बिन सीस ।
स्वासा अटकि रहे आसा लगि, जीवहिं कोटि वरीस ॥
तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के सकल जोग के ईस ।
सूरदास रसिक की बतियाँ पुरबौ मन जगदीस ॥

(16)

ऊधो ! मोहि ब्रज बिसरत नाहीं ।
हंससुता की सुन्दरि कगरी अरु कुंजन की छाहीं ॥
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं ।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं ॥
यह मथुरा कंचन की नगरी मनि-मुक्ताहल जाहीं ।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत तनु नाहीं ?
अनगन भाँति करी बहु लीला जसुदा नन्द निवाहीं ।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै यह कहि कहि पछिताहीं ॥

शब्दार्थ – हंससुता= सूर्य की कन्या, यमुना । कगरी = कगार, किनारा । नाहीं = तन नहीं रह जाता अर्थात् उसकी सुध भूल जाती है । अनगन = अगणित, अनेक ।

तुलसीदास

रामचरितमानस

अयोध्याकाण्ड

(1)

जासु बियोग बिकल पसु ऐसें। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाए। सुरसरि तीर आपु तब आए॥
मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥
एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥

अर्थ – जिनके वियोग में पशु इस प्रकार व्याकुल हैं, उनके वियोग में प्रजा, माता और पिता कैसे जीते रहेंगे ? राम ने जबरदस्ती सुमंत्र को लौटाया। तब आप गंगा के तीर पर आए। राम ने केवट से नाव माँगी, पर वह लाता नहीं। वह कहने लगा – मैंने तुम्हारा मर्म (भेद) जान लिया। तुम्हारे चरण कमलों की धूल के लिए सब लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देनेवाली कोई जड़ी है, जिसके छूते ही पत्थर की शिला सुन्दरी स्त्री हो गई (मेरी नाव तो काठ की है)। काठ पत्थर से कठोर तो होता नहीं। मेरी नाव भी मुनि की स्त्री हो जाएगी और इस प्रकार मेरी नाव उड़ जाएगी, मैं लुट जाऊँगा (अथवा रास्ता रुक जाएगा, जिससे आप पार न हो सकेंगे और मेरी रोजी मारी जाएगी) (मेरी कमाने-खाने की राह ही मारी जाएगी)। मैं तो इसी नाव से सारे परिवार का पालन-पोषण करता हूँ। दूसरा कोई धंधा नहीं जानता। हे प्रभु ! यदि तुम अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझे पहले अपने चरण-कमल पखारने (धो लेने) के लिए कह दो। हे नाथ ! मैं चरण कमल धोकर आप लोगों को नाव पर चढ़ा लूँगा; मैं आपसे कुछ उतराई नहीं चाहता। हे राम ! मुझे आपकी दुहाई और दशरथ की सौगन्ध है, मैं सब सच-सच कहता हूँ। लक्ष्मण भले ही मुझे तीर मारें, पर जब तक मैं पैरों को पखार न लूँगा, तब तक हे तुलसीदास के नाथ ! हे कृपालु ! मैं पार नहीं उतारूँगा।

केवट के प्रेम में लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर करुणाधाम राम जानकी और लक्ष्मण की ओर देखकर हँसे।

(2)

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा॥
पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥
अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥

अर्थ – कृपा के समुद्र राम केवट से मुसकराकर बोले – भाई ! तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाए। जल्दी पानी ला और पैर धो ले। देर हो रही है, पार उतार दे। एक बार जिनका नाम स्मरण करते ही मनुष्य अपार भवसागर के पार उतर जाते हैं और जिन्होंने (वामनावतार में) जगत को तीन पग से भी छोटा कर दिया था (दो ही पग में त्रिलोकी को नाप लिया था), वही कृपालु राम (गंगा से पार उतारने के लिए) केवट का निहोरा कर रहे हैं ! प्रभु के इन वचनों को सुनकर गंगा की बुद्धि मोह से खिंच गई थी(कि ये साक्षात् भगवान होकर भी पार उतारने के लिए केवट का निहोरा कैसे कर रहे हैं)। परन्तु (समीप आने पर अपनी उत्पत्ति के स्थान) पदनखों को देखते ही (उन्हें पहचानकर) देवनदी गंगा हर्षित हो गईं। (वे समझ गईं कि भगवान नरलीला कर रहे हैं, इससे उनका मोह नष्ट हो गया; और इन चरणों का स्पर्श प्राप्त करके मैं धन्य होऊँगी, यह विचारकर वे हर्षित हो गईं।) केवट राम की आज्ञा पाकर कठौते में भरकर जल ले आया। अत्यन्त आनन्द और प्रेम में उमंगकर वह भगवान के चरणकमल धोने लगा। सब देवता फूल बरसाकर सिहाने लगे कि इसके समान पुण्य की राशि कोई नहीं है। चरणों को धोकर और सारे परिवार सहित स्वयं उस जल (चरणोदक) को पीकर पहले (उस महान् पुण्य के द्वारा) अपने पितरों को भवसागर से पार कर फिर आनन्दपूर्वक प्रभु राम को गंगा के पार ले गया।

(3)

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥

कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीन दयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा॥

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥

अर्थ – निषादराज और लक्ष्मण सहित सीता और राम (नाव से) उतरकर गंगा की रेत (बालू) में खड़े हो गए। तब केवट ने उतरकर दंडवत की। (उसको दंडवत करते देखकर) प्रभु को संकोच हुआ कि इसको कुछ दिया नहीं। पति के हृदय की जाननेवाली सीता ने आनन्द भरे मन से अपनी रत्नजड़ित अँगूठी (अंगुली से) उतारी। कृपालु राम ने केवट से कहा, नाव की उतराई लो। केवट ने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिए। (उसने कहा –) हे नाथ ! आज मैंने क्या नहीं पाया ! मेरे दोष, दुःख और दरिद्रता की आग आज बुझ गई है। मैंने बहुत समय तक मजदूरी की। विधाता ने आज बहुत अच्छी भरपूर मजदूरी दे दी। हे नाथ ! हे दीनदयाल ! आपकी कृपा से अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। लौटती बार आप मुझे जो कुछ देंगे, वह प्रसाद मैं सिर चढ़ाकर लूँगा। प्रभु राम, लक्ष्मण और सीता ने बहुत आग्रह (या यत्न) किया, पर केवट कुछ नहीं लेता। तब करुणा के धाम भगवान राम ने निर्मल भक्ति का वरदान देकर उसे विदा किया।

(4)

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई॥
मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥
अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला॥
सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी॥
कस न कहहु अस रघुकुलकेतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू॥

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥

अर्थ – हे मुनिराज ! आपके चरणों का दर्शन करने से आज हमारे सब पुण्य सफल हो गए (हमें सारे पुण्यों का फल मिल गया)। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ कोई भी मुनि उद्वेग को प्राप्त न हो – क्योंकि जिनसे मुनि और तपस्वी दुःख पाते हैं, वे राजा बिना अग्नि के ही (अपने दुष्ट कर्मों से ही) जलकर भस्म हो जाते हैं। ब्राह्मणों का संतोष सब मंगलों की जड़ है और भूदेव ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों कुलों को भस्म कर देता है। ऐसा हृदय में समझकर – वह स्थान बतलाइए जहाँ मैं लक्ष्मण और सीता सहित जाऊँ और वहाँ सुन्दर पत्तों और घास की कुटी बनाकर, हे दयालु ! कुछ समय निवास करूँ। राम की सहज ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि वाल्मीकि बोले– धन्य ! धन्य ! हे रघुकुल के ध्वजास्वरूप ! आप ऐसा क्यों न कहेंगे ? आप सदैव वेद की मर्यादा का पालन (रक्षण) करते हैं। हे राम ! आप वेद की मर्यादा के रक्षक जगदीश्वर हैं और जानकी (आपकी स्वरूपभूता) माया हैं, जो कृपा के भण्डार आपका रुख पाकर जगत का सृजन, पालन और संहार करती हैं। जो हजार मस्तकवाले सर्पों के स्वामी और पृथ्वी को अपने सिर पर धारण करनेवाले हैं, वही चराचर के स्वामी शेष लक्ष्मण हैं। देवताओं के कार्य के लिए आप राजा का शरीर धारण करके दुष्ट राक्षसों की सेना का नाश करने के लिए चले हैं। हे राम ! आपका स्वरूप वाणी के अगोचर, बुद्धि से परे, अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। वेद निरन्तर उसका 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं।

(5)

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥
चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा॥

पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहितुम्हहि देखावौं ठाउँ॥

अर्थ – हे राम ! जगत दृश्य है, आप उसके देखनेवाले हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को भी नचानेवाले हैं। जब वे भी आपके मर्म को नहीं जानते, तब और कौन आपको जाननेवाला है ? वही आपको जानता है, जिसे आप जना देते हैं और जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन जाता है। हे रघुनन्दन ! हे भक्तों के हृदय को शीतल करनेवाले चन्दन ! आपकी ही कृपा से भक्त आपको जान पाते हैं। आपकी देह चिदानन्दमय है (यह प्रकृतिजन्य पंच महाभूतों की बनी हुई कर्म बंधनयुक्त त्रिदेहविशिष्ट मायिक नहीं है) और (उत्पत्ति-नाश, वृद्धि-क्षय आदि) सब विकारों से रहित है; इस रहस्य को अधिकारी पुरुष ही जानते हैं। आपने

देवता और सन्तों के कार्य के लिए (दिव्य) नर-शरीर धारण किया है और प्राकृत (प्रकृति के तत्त्वों से निर्मित देहवाले, साधारण) राजाओं की तरह से कहते और करते हैं। हे राम ! आपके चरित्रों को देख और सुनकर मूर्ख लोग तो मोह को प्राप्त होते हैं और ज्ञानीजन सुखी होते हैं। आप जो कुछ कहते, करते हैं, वह सब सत्य (उचित) ही है; क्योंकि जैसा स्वाँग भरे वैसा ही नाचना भी तो चाहिए (इस समय आप मनुष्य रूप में हैं, अतः मनुष्योचित व्यवहार करना ठीक ही है)। आपने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ? परन्तु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिए। तब मैं आपके रहने के लिए स्थान दिखाऊँ।

(6)

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी॥
सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥

अर्थ – मुनि के प्रेमरस से सने हुए वचन सुनकर राम (रहस्य खुल जाने के डर से) सकुचाकर मन में मुसकराए। वाल्मीकि हँसकर फिर अमृत-रस में डुबोई हुई मीठी वाणी बोले – हे राम ! सुनिए, अब मैं वे स्थान बताता हूँ जहाँ आप सीता और लक्ष्मण समेत निवास कीजिए। जिनके कान समुद्र की भाँति आपकी सुन्दर कथारूपी अनेक सुन्दर नदियों से निरन्तर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूरे (तृप्त) नहीं होते, उनके हृदय आपके लिए सुन्दर घर हैं और जिन्होंने अपने नेत्रों को चातक बना रखा है, जो आपके दर्शनरूपी मेघ के लिए सदा लालायित रहते हैं; तथा जो भारी-भारी नदियों, समुद्रों और झीलों का निरादर करते हैं और आपके सौन्दर्य (रूपी मेघ) के एक बूँद जल से सुखी हो जाते हैं (अर्थात् आपके दिव्य सच्चिदानन्दमय स्वरूप के किसी एक अंग की जरा-सी भी झाँकी के सामने स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों जगत के, अर्थात् पृथ्वी, स्वर्ग और ब्रह्मलोक तक के सौन्दर्य का तिरस्कार करते हैं), हे रघुनाथ ! उन लोगों के हृदयरूपी सुखदायी भवनों में आप भाई लक्ष्मण और सीता सहित निवास कीजिए। आपके यशरूपी निर्मल मानसरोवर में जिसकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुणसमूहरूपी मोतियों को चुगती रहती है, हे राम ! आप उसके हृदय में बसिए।

(7)

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥

सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥

अर्थ – जिसकी नासिका प्रभु (आप) के पवित्र और सुगन्धित (पुष्पादि) सुन्दर प्रसाद को नित्य आदर के साथ ग्रहण करती (सूँघती) है, और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके प्रसाद रूप ही वस्त्राभूषण धारण करते हैं; जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देखकर बड़ी नम्रता के साथ प्रेम सहित झुक जाते हैं; जिनके हाथ नित्य राम (आप) के चरणों की पूजा करते हैं, और जिनके हृदय में राम (आप) का ही भरोसा है, दूसरा नहीं; तथा जिनके चरण राम (आप) के तीर्थों में चलकर जाते हैं; हे राम ! आप उनके मन में निवास कीजिए। जो नित्य आपके (रामनामरूप) मंत्रराज को जपते हैं और परिवार (परिकर) सहित आपकी पूजा करते हैं। जो अनेक प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं, तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत दान देते हैं; तथा जो गुरु को हृदय में आपसे भी अधिक (बड़ा) जानकर सर्वभाव से सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं; और ये सब कर्म करके सबका एक मात्र यही फल माँगते हैं कि राम के चरणों में हमारी प्रीति हो; उन लोगों के मनरूपी मंदिरों में सीता और रघुकुल को आनन्दित करनेवाले आप दोनों बसिए।

(8)

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी॥
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥

स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥

अर्थ – जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह हैं; न लोभ है, न क्षोभ है; न राग है, न द्वेष है; और न कपट, दम्भ और माया ही है – हे रघुराज ! आप उनके हृदय में निवास कीजिए। जो सबके प्रिय और सबका हित करनेवाले हैं; जिन्हें दुःख और सुख तथा प्रशंसा (बड़ाई) और गाली (निन्दा) समान हैं, जो विचारकर सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं तथा जो जागते-सोते आपकी ही शरण हैं, और आपको छोड़कर जिनके दूसरे कोई गति (आश्रय) नहीं है, हे राम ! आप उनके मन में बसिए। जो पराई स्त्री को जन्म देनेवाली माता के समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विष से भी भारी विष है, जो दूसरे की संपत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर विशेष रूप से दुखी होते हैं, और हे राम ! जिन्हें आप प्राणों के समान प्यारे हैं, उनके मन आपके रहने योग्य शुभ भवन हैं। हे तात ! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं; उनके मनरूपी मन्दिर में सीता सहित आप दोनों भाई निवास कीजिए।

(9)

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

अर्थ – जो अवगुणों को छोड़कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गो के लिए संकट सहते हैं, नीति-निपुणता में जिनकी जगत में मर्यादा है, उनका सुन्दर मन आपका घर है। जो गुणों को आपका और दोषों को अपना समझता है, जिसे सब प्रकार से आपका ही भरोसा है, और राम भक्त जिसे प्यारे लगते हैं, उसके हृदय में आप सीता सहित निवास कीजिए। जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा परिवार और सुख देनेवाला घर – सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदय में धारण किए रहता है, हे रघुनाथ ! आप उसके हृदय में रहिए। स्वर्ग, नरक और मोक्ष जिसकी दृष्टि में समान हैं, क्योंकि वह जहाँ-तहाँ (सब जगह) केवल धनुष-बाण धारण किए आपको ही देखता है; और जो कर्म से, वचन से और मन से आपका दास

है, हे राम ! आप उसके हृदय में डेरा कीजिए। जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिए और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, आप उसके मन में निरन्तर निवास कीजिए; वह आपका अपना घर है।

(10)

जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबलु बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥
अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥
सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीयँ सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई॥
जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई॥
सुनहू लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥

अर्थ – सारा जगत भय में डूब गया। तब लक्ष्मण के अपार बाहुबल की प्रशंसा करती हुई आकाशवाणी हुई – हे तात ! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जान सकता है ? परन्तु कोई भी काम हो, उसे अनुचित-उचित खूब समझ-बूझकर किया जाए तो सब कोई अच्छा कहते हैं। वेद और विद्वान कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दी में किसी काम को करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान नहीं हैं। देववाणी सुनकर लक्ष्मण सकुचा गए। राम और सीता ने उनका आदर के साथ सम्मान किया (और कहा –) हे तात ! तुमने बड़ी सुन्दर नीति कही। हे भाई ! राज्य का मद सबसे कठिन मद है। जिन्होंने साधुओं की सभा का सेवन (सत्संग) नहीं किया, वे ही राजा राजमदरूपी मदिरा का आचमन करते ही (पीते ही) मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण ! सुनो, भरत-सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न तो कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है। (अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है) ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद पाकर भी भरत को राज्य का मद नहीं होने का ! क्या कभी काँजी की बूँदों से क्षीरसमुद्र नष्ट हो सकता (फट सकता) है ?

(11)

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़ै छोनी॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥

गहि गुन पय तजि अवगुण बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ॥

सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु॥

अर्थ – अन्धकार चाहे तरुण (मध्याह्न के) सूर्य को निगल जाए। आकाश चाहे बादलों में समाकर मिल जाए। गौ के खुर – इतने जल में अगस्त्य डूब जाएँ और पृथ्वी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमा (सहनशीलता) को छोड़ दे। मच्छर की फूँक से चाहे सुमेरु उड़ जाए। परन्तु हे भाई ! भरत को राजमद कभी नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारी शपथ और पिता की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, भरत के समान पवित्र और उत्तम भाई संसार में नहीं है। हे तात ! गुरुरूपी दूध और अवगुणरूपी जल को मिलाकर विधाता इस दृश्य-प्रपंच (जगत) को रचता है, परन्तु भरत ने सूर्यवंशरूपी तालाब में हंस रूप जन्म लेकर गुण और दोष का विभाग कर दिया (दोनों को अलग-अलग कर दिया)। गुणरूपी दूध को ग्रहण कर और अवगुणरूपी जल को त्यागकर भरत ने अपने यश से जगत में उजियाला कर दिया है। भरत के गुण, शील और स्वभाव को कहते-कहते रघुनाथ प्रेमसमुद्र में मग्न हो गए। राम की वाणी सुनकर और भरत पर उनका प्रेम देखकर समस्त देवता उनकी सराहना करने लगे (और कहने लगे) कि राम के समान कृपा के धाम प्रभु और कौन हैं ?

(12)

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायउ रंका॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥
देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥
सखहि सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥

प्रेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥

अर्थ – सखा के वचन सुनकर और वृक्षों को देखकर भरत के नेत्रों में जल उमड़ आया। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले। उनके प्रेम का वर्णन करने में सरस्वती भी सकुचाती हैं। राम के चरणचिह्न देखकर दोनों भाई ऐसे हर्षित होते हैं मानो दरिद्र पारस पा गया हो। वहाँ की रज को मस्तक पर रखकर हृदय में और नेत्रों में लगाते हैं और रघुनाथ के मिलने के समान सुख पाते हैं। भरत की अत्यन्त अनिर्वचनीय दशा देखकर वन के पशु, पक्षी और जड़ (वृक्षादि) जीव प्रेम में मग्न हो गए। प्रेम के विशेष वश होने से सखा निषादराज को

भी रास्ता भूल गया । तब देवता सुन्दर रास्ता बतलाकर फूल बरसाने लगे । भरत के प्रेम की इस स्थिति को देखकर सिद्ध और साधक लोग भी अनुराग से भर गए और उनके स्वाभाविक प्रेम की प्रशंसा करने लगे कि यदि इस पृथ्वीतल पर भरत का जन्म (अथवा प्रेम) न होता, तो जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कौन करता ? प्रेम अमृत है, विरह मंदराचल पर्वत है, भरत गहरे समुद्र हैं । कृपा के समुद्र राम ने देवता और साधुओं के हित के लिए स्वयं (इस भरतरूपी गहरे समुद्र को अपने विरहरूपी मंदराचल से) मथकर यह प्रेमरूपी अमृत प्रकट किया है ।

(13)

सखा समेत मनोहर जोटा । लखेउ न लखन सघन बन ओटा ॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन । सकल सुमंगल सदनु सुहावन ॥
करत प्रबेस मिटे दुख दावा । जनु जोगीं परमारथु पावा ॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे । पूँछे बचन कहत अनुरागे ॥
सीस जटा कटि मुनि पट बाँधें । तून कसें कर सरु धनु काँधें ॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू । सीय सहित राजत रघुराजू ॥
बलकल बसन जटिल तनु स्यामा । जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा ॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत । जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥

लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु ।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु ॥

अर्थ – सखा निषादराज सहित इस मनोहर जोड़ी को सघन वन की आड़ के कारण लक्ष्मण नहीं देख पाए । भरत ने प्रभु राम के समस्त सुमंगलों के धाम और सुन्दर पवित्र आश्रम को देखा । आश्रम में प्रवेश करते ही भरत का दुःख और दाह (जलन) मिट गया, मानो योगी को परमार्थ (परमतत्त्व) की प्राप्ति हो गई हो । भरत ने देखा कि लक्ष्मण प्रभु के आगे खड़े हैं और पूछे हुए वचन प्रेमपूर्वक कह रहे हैं (पूछी हुई बात का प्रेमपूर्वक उत्तर दे रहे हैं) । सिर पर जटा है । कमर में मुनियों का (वल्कल) वस्त्र बाँधे हैं और उसी में तरकस कसे हैं । हाथ में बाण तथा कन्धे पर धनुष है । वेदी पर मुनि तथा साधुओं का समुदाय बैठा है और सीता सहित रघुनाथ विराजमान हैं । राम के वल्कल वस्त्र हैं, जटा धारण किए हैं, श्याम शरीर है । (सीताराम ऐसे लगते हैं) मानो रति और कामदेव ने मुनि का वेष धारण किया हो । राम अपने करकमलों से धनुष-बाण फेर रहे हैं, और हँसकर देखते ही जी की जलन हर लेते हैं (अर्थात् जिसकी ओर भी एक बार हँसकर देख लेते हैं, उसी को परम आनन्द और शान्ति मिल जाती है) । सुन्दर मुनि मण्डली के बीच में सीता और रघुकुलचन्द्र राम ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो ज्ञान की सभा में साक्षात् भक्ति और सच्चिदानन्द शरीर धारण करके विराजमान हैं ।

(14)

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥
बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जियँ जाने॥
बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बन्ई। सुकबि लखन मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान॥

अर्थ – छोटे भाई शत्रुघ्न और सखा निषादराज समेत भरत का मन (प्रेम में) मग्न हो रहा है। हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि सब भूल गए। 'हे नाथ ! रक्षा कीजिए, हे गुसाईं ! रक्षा कीजिए' ऐसा कहकर वे पृथ्वी पर दंड की तरह गिर पड़े। प्रेमभरे वचनों से लक्ष्मण ने पहचान लिया और मन में जान लिया कि भरत प्रणाम कर रहे हैं। (वे राम की ओर मुँह किए खड़े थे, भरत पीठ-पीछे थे; इससे उन्होंने देखा नहीं।) अब इस ओर तो भाई भरत का सरस प्रेम और उधर स्वामी राम की सेवा की प्रबल परवशता। न तो (क्षणभर के लिए भी सेवा से पृथक् होकर) मिलते ही बनता है और न (प्रेमवश) छोड़ते (उपेक्षा करते) ही। कोई श्रेष्ठ कवि ही लक्ष्मण के चित्त की इस गति (दुविधा) का वर्णन कर सकता है। वे सेवा पर भार रखकर रह गए (सेवा को ही विशेष महत्त्वपूर्ण समझकर उसी में लगे रहे) मानो चढ़ी हुई पतंग को खिलाड़ी (पतंग उड़ानेवाला) खींच रहा हो। लक्ष्मण ने प्रेम सहित पृथ्वी पर मस्तक नवाकर कहा – हे रघुनाथ ! भरत प्रणाम कर रहे हैं। यह सुनते ही रघुनाथ प्रेम में अधीर होकर उठे। कहीं वस्त्र गिरा, कहीं तरकस, कहीं धनुष और कहीं बाण। कृपानिधान राम ने उनको जबरदस्ती उठाकर हृदय से लगा लिया ! भरत और राम के मिलने की रीति को देखकर सबको अपनी सुध भूल गई।

(15)

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी॥
परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥
कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई॥
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥
अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँति। बाज सुराग कि गाँडर ताँती॥
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी॥
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे॥

मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायँ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम॥

अर्थ – मिलन की प्रीति कैसे बखानी जाए ? वह तो कविकुल के लिए कर्म, मन, वाणी तीनों से अगम है। दोनों भाई (भरत और राम) मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को भुलाकर परम प्रेम से पूर्ण हो रहे हैं। कहिए, उस श्रेष्ठ प्रेम को कौन प्रकट करे ? कवि की बुद्धि किसकी छाया का अनुसरण करे ? कवि को तो अक्षर और अर्थ का ही सच्चा बल है। नट ताल की गति के अनुसार ही नाचता है ! भरत और रघुनाथ का प्रेम अगम्य है, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का भी मन नहीं जा सकता। उस प्रेम को मैं कुबुद्धि किस प्रकार कहूँ ! भला, गाँडर की ताँत से भी कहीं सुन्दर राग बज सकता है ? (तालाबों और झीलों में एक तरह की घास होती है, उसे गाँडर कहते हैं।) भरत और राम के मिलने का ढंग देखकर देवता भयभीत हो गए, उनकी धुकधुकी धड़कने लगी। देव गुरु बृहस्पति ने समझाया, तब कहीं वे मूर्ख चेते और फूल बरसाकर प्रशंसा करने लगे। फिर राम प्रेम के साथ शत्रुघ्न से मिलकर तब केवट (निषादराज) से मिले। प्रणाम करते हुए लक्ष्मण से भरत बड़े ही प्रेम से मिले।

(16)

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे॥
सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए॥
सीयँ असीस दीन्हि मन माहीं। मनग सनेहँ देह सुधि नाहीं॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता॥
कोउ किछु कहई न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि॥

नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोग॥

अर्थ – तब लक्ष्मण ललककर (बड़ी उमंग के साथ) छोटे भाई शत्रुघ्न से मिले। फिर उन्होंने निषादराज को हृदय से लगा लिया। फिर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाइयों ने (उपस्थित) मुनियों को प्रणाम किया और इच्छित आशीर्वाद पाकर वे आनन्दित हुए। छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरत प्रेम में उमँगकर सीता के चरण कमलों की रज सिर पर धारण कर बार-बार प्रणाम करने लगे। सीता ने उन्हें उठाकर उनके सिर को अपने करकमल से स्पर्श कर (सिर पर हाथ फेरकर) उन दोनों को बैठाया। सीता ने मन-ही-मन आशीर्वाद दिया; क्योंकि वे स्नेह में मग्न हैं, उन्हें देह की सुध-बुध नहीं है। सीता को सब प्रकार से अपने अनुकूल देखकर भरत सोचरहित हो गए और उनके हृदय का कल्पित भय जाता रहा। उस समय न तो कोई कुछ कहता है, न कोई कुछ पूछता है। मन प्रेम से परिपूर्ण है, वह अपनी गति से खाली है (अर्थात् संकल्प-विकल्प और

चांचल्य से शून्य है) । उस अवसर पर केवट (निषादराज) धीरज धर और हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनती करने लगा – हे नाथ ! मुनिनाथ वशिष्ठ के साथ सब माताएँ, नगरवासी, सेवक, सेनापति, मंत्री – सब आपके वियोग से व्याकुल होकर आए हैं।

(17)

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू॥
चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला॥
गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिबर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू॥
राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥
रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहि सुर बरिसहिं फूला॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं॥

जेहि लखि लखनहु तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाउ॥

अर्थ – गुरु का आगमन सुनकर शील के समुद्र राम ने सीता के पास शत्रुघ्न को रख दिया और वे परम धीर, धर्मधुरंधर, दीनदयालु राम उसी समय वेग के साथ चल पड़े । गुरु के दर्शन करके लक्ष्मण सहित प्रभु राम प्रेम में भर गए और दंडवत प्रणाम करने लगे। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ ने दौड़कर उन्हें हृदय से लगा लिया और प्रेम में उमँगकर वे दोनों भाइयों से मिले । फिर प्रेम से पुलकित होकर केवट (निषादराज) ने अपना नाम लेकर दूर से ही वशिष्ठ को दंडवत प्रणाम किया । ऋषि वशिष्ठ ने रामसखा जानकर उसको जबरदस्ती हृदय से लगा लिया । मानो जमीन पर लोटते हुए प्रेम को समेट लिया हो । रघुनाथ की भक्ति सुन्दर मंगलों का मूल है – इस प्रकार कहकर सराहना करते हुए देवता आकाश से फूल बरसाने लगे । वे कहने लगे – जगत में इसके समान सर्वथा नीच कोई नहीं और वशिष्ठ के समान बड़ा कौन है ? जिस (निषाद) को देखकर मुनिराज वशिष्ठ लक्ष्मण से भी अधिक उससे आनन्दित होकर मिले । यह सब सीतापति राम के भजन का प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है ।

(18)

आरत लोग राम सबु जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥
जो जेहि भायँ रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी॥
सानुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥
मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा॥
देखीं राम दुखित महतारीं। जनु सुबेलि अवलीं हिम मारीं॥

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥

भेटीं रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु॥

अर्थ – दया की खान, सुजान भगवान राम ने सब लोगों को दुखी (मिलने के लिए व्याकुल) जाना। तब जो जिस भाव से मिलने का अभिलाषी था, उस-उस का उस-उस प्रकार का रुख रखते हुए (उसकी रुचि के अनुसार)। उन्होंने लक्ष्मण सहित पल भर में सब किसी से मिलकर उनके दुःख और कठिन संताप को दूर कर दिया। राम के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। जैसे करोड़ों घड़ों में एक ही सूर्य की (पृथक्-पृथक्) छाया (प्रतिबिम्ब) एक साथ ही दिखती है। समस्त पुरवासी प्रेम में उमँगकर केवट से मिलकर (उसके) भाग्य की सराहना करते हैं। राम ने सब माताओं को दुखी देखा। मानो सुन्दर लताओं की पंक्तियों को पाला मार गया हो। सबसे पहले राम कैकेयी से मिले और अपने सरल स्वभाव तथा भक्ति से उसकी बुद्धि को तर कर दिया। फिर चरणों में गिरकर काल, कर्म और विधाता के सिर दोष मढ़कर, राम ने उनको सांत्वना दी। फिर रघुनाथ सब माताओं से मिले। उन्होंने सबको समझा-बुझाकर संतोष कराया कि हे माता! जगत ईश्वर के अधीन है। किसी को भी दोष नहीं देना चाहिए।

(19)

गुरतिय पद बंदे दुहु भाईं। सहित बिप्रतिय जे सँग आईं॥
गंग गौरिसम सब सनमानीं। देहिं असीस मुदित मृदु बानीं॥
गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अति रंका॥
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता। परे प्रेम ब्याकुल सब गाता॥
अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू। किमि कबि कहै मूक जिमि स्वादू॥
मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुर सन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू॥

महिसुर मंत्री मातु गुरु गने लोग लिए साथ।
पावन आश्रम गवनु किय भरत लखन रघुनाथ॥

अर्थ – फिर दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों की स्त्रियों सहित – जो भरत के साथ आई थीं, गुरु की पत्नी अरुन्धती के चरणों की वंदना की और उन सबका गंगा तथा गौरी के समान सम्मान किया। वे सब आनन्दित होकर कोमल वाणी से आशीर्वाद देने लगीं। तब दोनों भाई पैर पकड़कर सुमित्रा की गोद में जा चिपटे। मानो किसी अत्यन्त दरिद्र को संपत्ति से भेंट हो गई हो। फिर दोनों भाई माता कौसल्या के चरणों में गिर पड़े। प्रेम के मारे उनके सारे अंग शिथिल हैं। बड़े ही स्नेह से माता ने उन्हें हृदय से लगा लिया और नेत्रों से बहे हुए प्रेमाश्रुओं के जल से उन्हें नहला दिया। उस समय के हर्ष और विषाद को कवि कैसे कहे? जैसे गूँगा

स्वाद को कैसे बताए ? रघुनाथ ने छोटे भाई लक्ष्मण सहित माता कौसल्या से मिलकर गुरु से कहा कि आश्रम पर पधारिए। तदनन्तर मुनीश्वर वशिष्ठ की आज्ञा पाकर अयोध्यावासी सब लोग जल और थल का सुभीता देख-देखकर उतर गए। ब्राह्मण, मंत्री, माताएँ और गुरु आदि गिने-चुने लोगों को साथ लिए हुए, भरत, लक्ष्मण और रघुनाथ पवित्र आश्रम को चले।

(20)

सीय आइ मुनिबर पग लागी। उचित असीस लही मन मागी॥
गुरपतिनिहि मुनितियन्ह समेता। मिली प्रेमु कहि जाइ न जेता॥
बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन लहे प्रिय जी के॥
सासु सकल सब सीयँ निहारीं। मूदे नयन सहमि सुकुमारीं॥
परीं बधिक बस मनहुँ मरालीं। काह कीन्ह करतार कुचालीं॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा। सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा॥
जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोयन भरि नीरा॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई॥

लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग।
हृदयँ असीसहिं प्रेम बस रहिअहु भरी सोहाग॥

अर्थ – सीता आकर मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठ के चरणों लगीं और उन्होंने मनमाँगी उचित आशीष पाई। फिर मुनियों की स्त्रियों सहित गुरु पत्नी अरून्धती से मिलीं। उनका जितना प्रेम था, वह कहा नहीं जाता। सीता ने सभी के चरणों की अलग-अलग वन्दना करके अपने हृदय को प्रिय (अनुकूल) लगनेवाले आशीर्वाद पाए। जब सुकुमारी सीता ने सब सासुओं को देखा, तब उन्होंने सहमकर अपनी आँखें बंद कर लीं। (सासुओं की बुरी दशा देखकर) उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो राजहंसिनियाँ बधिक के वश में पड़ गई हों। (मन में सोचने लगीं कि) कुचाली विधाता ने क्या कर डाला ? उन्होंने भी सीता को देखकर बड़ा दुःख पाया । (सोचा) जो कुछ दैव सहाए, वह सब सहना ही पड़ता है। तब जानकी हृदय में धीरज धरकर, नील कमल के समान नेत्रों में जल भरकर, सब सासुओं से जाकर मिलीं। उस समय पृथ्वी पर करुणा (करुण रस) छा गई। सीता सबके पैरों लग-लगकर अत्यन्त प्रेम से मिल रही हैं, और सब सासुएँ स्नेहवश हृदय से आशीर्वाद दे रही हैं कि तुम सुहाग से भरी रहो (अर्थात् सदा सौभाग्यवती रहो)।

(21)

बिकल सनेहँ सीय सब रानीं। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानीं॥
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा॥
नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा॥
मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी॥

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहूँ राजु अकाजेउ आजू॥
मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए॥
ब्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहें जलु काहुँ न लीन्हा॥

भोरु भएँ रघुनंदनहि जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादरु कीन्ह॥

अर्थ – सीता और सब रानियाँ स्नेह के मारे व्याकुल हैं। तब ज्ञानी गुरु ने सबको बैठ जाने के लिए कहा। फिर मुनिनाथ वशिष्ठ ने जगत की गति को मायिक कहकर (अर्थात् जगत माया का है, इसमें कुछ भी नित्य नहीं है, ऐसा कहकर) कुछ परमार्थ की कथाएँ (बातें) कहीं। तदनन्तर वशिष्ठ ने राजा दशरथ के स्वर्ग गमन की बात सुनाई। जिसे सुनकर रघुनाथ ने दुःसह दुःख पाया। और अपने प्रति उनके स्नेह को उनके मरने का कारण विचारकर धीरधुरन्धर राम अत्यन्त व्याकुल हो गए। वज्र के समान कठोर, कड़वी वाणी सुनकर लक्ष्मण, सीता और सब रानियाँ विलाप करने लगीं। सारा समाज शोक से अत्यन्त व्याकुल हो गया! मानो राजा आज ही मरे हों। फिर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ ने राम को समझाया। तब उन्होंने समाज सहित श्रेष्ठ नदी मन्दाकिनी में स्नान किया। उस दिन प्रभु राम ने निर्जल व्रत किया। मुनि वशिष्ठ के कहने पर भी किसी ने जल ग्रहण नहीं किया। दूसरे दिन सबेरा होने पर मुनि वशिष्ठ ने रघुनाथ को जो-जो आज्ञा दी, वह सब कार्य प्रभु राम ने श्रद्धा-भक्ति सहित आदर के साथ किया।

(22)

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥
सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुसरि जस॥
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते। बोले गुर सन राम पिरीते॥
नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु अहारी॥
सानुज भरतु सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता॥
सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ॥
बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाँई॥

धर्म सेतु करुनायतन कस न कहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहुँ बिश्रामु॥

अर्थ – वेदों में जैसा कहा गया है, उसी के अनुसार पिता की क्रिया करके, पापरूपी अन्धकार के नष्ट करनेवाले सूर्यरूप राम शुद्ध हुए! जिनका नाम पापरूपी रूई के (तुरंत जला डालने के) लिए अग्नि है; और जिनका स्मरण मात्र समस्त शुभ मंगलों का मूल है वे (नित्य शुद्ध-बुद्ध) भगवान राम शुद्ध हुए! साधुओं की ऐसी सम्मति है कि उनका शुद्ध होना वैसे ही है जैसा तीर्थों के आवाहन से गंगा शुद्ध होती हैं! (गंगा तो स्वभाव

से ही शुद्ध हैं, उनमें जिन तीर्थों का आवाहन किया जाता है उलटे वे ही गंगा के संपर्क में आने से शुद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार राम तो नित्य शुद्ध हैं, उनके संसर्ग से कर्म ही शुद्ध हो गए।) जब शुद्ध हुए दो दिन बीत गए तब राम प्रीति के साथ गुरु से बोले – हे नाथ ! सब लोग यहाँ अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। कंद, मूल, फल और जल का ही आहार करते हैं। भाई शत्रुघ्न सहित भरत को, मंत्रियों को और सब माताओं को देखकर मुझे एक-एक पल युग के समान बीत रहा है। अतः सबके साथ आप अयोध्यापुरी को पधारिए (लौट जाइए)। आप यहाँ हैं और राजा अमरावती (स्वर्ग) में हैं (अयोध्या सूनी है) ! मैंने बहुत कह डाला, यह सब बड़ी ढिठाई की है। हे गोसाईं ! जैसा उचित हो, वैसा ही कीजिए। (वशिष्ठ ने कहा –) हे राम ! तुम धर्म के सेतु और दया के धाम हो, तुम भला ऐसा क्यों न कहो ? लोग दुखी हैं। दो दिन तुम्हारा दर्शन कर शान्ति लाभ कर लें।

(23)

राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू॥
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला॥
पावन पयँ तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि॥
राम सैल बन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं॥
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी॥
बिटप बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती॥
सुंदर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं॥

सरनि सरोरुह जल बिहग कूजत गुंजत भृंग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग॥

अर्थ – राम के वचन सुनकर सारा समाज भयभीत हो गया। मानो बीच समुद्र में जहाज डगमगा गया हो। परन्तु जब उन्होंने गुरु वशिष्ठ की श्रेष्ठ कल्याणमूलक वाणी सुनी, तो उस जहाज के लिए मानो हवा अनुकूल हो गई। सब लोग पवित्र पयस्विनी नदी में (अथवा पयस्विनी नदी के पवित्र जल में) तीनों समय (सबेरे, दोपहर और सायंकाल) स्नान करते हैं, जिसके दर्शन से ही पापों के समूह नष्ट हो जाते हैं और मंगल मूर्ति राम को दण्डवत प्रणाम कर-करके उन्हें नेत्र भर-भरकर देखते हैं। सब राम के पर्वत (कामदगिरि) और वन को देखने जाते हैं, जहाँ सभी सुख हैं और सभी दुःखों का अभाव है। झरने अमृत के समान जल झरते हैं और तीन प्रकार की (शीतल, मन्द, सुगन्ध) हवा तीनों प्रकार के (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) तापों को हर लेती है। असंख्य जाति के वृक्ष, लताएँ और तृण हैं तथा बहुत तरह के फल, फूल और पत्ते हैं। सुन्दर शिलाएँ हैं। वृक्षों की छाया सुख देनेवाली है। वन की शोभा किससे वर्णन की जा सकती है ? तालाबों में कमल खिल रहे हैं, जल के पक्षी कूज रहे हैं, भौंरे गुंजार कर रहे हैं और बहुत रंगों के पक्षी और पशु वन में वैर रहित होकर विहार कर रहे हैं।

(24)

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी॥
भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी॥
सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥
कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥
हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥

यह जियँ जानि सँकोचु तजि करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहि कृतारथ करनलगि फल तृन अंकुर लेहु॥

अर्थ – कोल, किरात और भील आदि वन के रहनेवाले लोग पवित्र, सुन्दर एवं अमृत के समान स्वादिष्ट मधु (शहद) को सुन्दर दोने बनाकर और उनमें भर-भरकर तथा कन्द, मूल, फल और अंकुर आदि की जूड़ियों (अँटियों) को। सबको विनय और प्रणाम करके उन चीजों के अलग-अलग स्वाद, भेद (प्रकार), गुण और नाम बता-बताकर देते हैं। लोग उनका बहुत दाम देते हैं, पर वे नहीं लेते और लौटा देने में राम की दुहाई देते हैं। प्रेम में मग्न हुए वे कोमल वाणी से कहते हैं कि साधु लोग प्रेम को पहचानकर उसका सम्मान करते हैं (अर्थात् आप साधु हैं, आप हमारे प्रेम को देखिए, दाम देकर या वस्तुएँ लौटाकर हमारे प्रेम का तिरस्कार न कीजिए)। आप तो पुण्यात्मा हैं, हम नीच निषाद हैं। राम की कृपा से ही हमने आप लोगों के दर्शन पाए हैं। हम लोगों को आपके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं, जैसे मरुभूमि के लिए गंगा की धारा दुर्लभ है ! (देखिए,) कृपालु राम ने निषाद पर कैसी कृपा की है। जैसे राजा हैं वैसा ही उनके परिवार और प्रजा को भी होना चाहिए। हृदय में ऐसा जानकर संकोच छोड़कर और हमारा प्रेम देखकर कृपा कीजिए और हमको कृतार्थ करने के लिए ही फल, तृण और अंकुर लीजिए।

(25)

तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहि गोसाँई। ईंधनु पात किरात मिताई॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥
हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धरमबुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ॥
जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे॥

लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं॥
नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै नौका तिरा॥

बिहरहिं बन चहु ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम॥

अर्थ – आप प्रिय पाहुने वन में पधारे हैं। आपकी सेवा करने के योग्य हमारे भाग्य नहीं हैं। हे स्वामी ! हम आपको क्या देंगे ? भीलों की मित्रता तो बस, ईंधन (लकड़ी) और पत्तों ही तक है। हमारी तो यही बड़ी भारी सेवा है कि हम आपके कपड़े और बर्तन नहीं चुरा लेते। हम लोग जड़ जीव हैं, जीवों की हिंसा करनेवाले हैं; कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति हैं। हमारे दिन-रात पाप करते ही बीतते हैं। तो भी न तो हमारी कमर में कपड़ा है और न पेट ही भरते हैं। हममें स्वप्न में भी कभी धर्मबुद्धि कैसी ? यह सब तो रघुनाथ के दर्शन का प्रभाव है। जब से प्रभु के चरण कमल देखे, तब से हमारे दुःसह दुःख और दोष मिट गए। वनवासियों के वचन सुनकर अयोध्या के लोग प्रेम में भर गए और उनके भाग्य की सराहना करने लगे। सब उनके भाग्य की सराहना करने लगे और प्रेम के वचन सुनाने लगे। उन लोगों के बोलने और मिलने का ढंग तथा सीताराम के चरणों में उनका प्रेम देखकर सब सुख पा रहे हैं। उन कोल-भीलों की वाणी सुनकर सभी नर-नारी अपने प्रेम का निरादर करते हैं (उसे धिक्कार देते हैं)। तुलसीदास कहते हैं कि यह रघुवंशमणि राम की कृपा है कि लोहा नौका को अपने ऊपर लेकर तैर गया। सब लोग दिनोंदिन परम आनन्दित होते हुए वन में चारों ओर विचरते हैं। जैसे पहली वर्षा के जल से मेढ़क और मोर-मोटे हो जाते हैं (प्रसन्न होकर नाचते-कूदते हैं)।

(26)

पुर जन नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥
लखा न मरमु राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ॥
सीयँ सासु सेवा बस कीन्हीं। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं॥
लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥
लोकहुँ बेद बिदित कबि कहहीं। राम बिमुख थलु नरक न लहहीं॥
यहु संसउ सब के मन माहीं। राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं॥

निसि न नीद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुचि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सँकोच॥

अर्थ – अयोध्यापुरी के पुरुष और स्त्री सभी प्रेम में अत्यन्त मग्न हो रहे हैं। उनके दिन पल के समान बीत जाते हैं। जितनी सासुएँ थीं, उतने ही वेष (रूप) बनाकर सीता सब सासुओं की आदरपूर्वक एक-सी सेवा करती हैं। राम के सिवा इस भेद को और किसी ने नहीं जाना। सब मायाएँ सीता की माया में ही हैं। सीता ने सासुओं को सेवा से वश में कर लिया। उन्होंने सुख पाकर सीख और आशीर्वाद दिए। सीता समेत दोनों भाइयों (राम-लक्ष्मण) को सरल स्वभाव देखकर कुटिल रानी कैकेयी भरपेट पछताई। वह पृथ्वी तथा यमराज से याचना करती है, किन्तु धरती बीच (फटकर समा जाने के लिए रास्ता) नहीं देती और विधाता मौत नहीं देता। लोक और वेद में प्रसिद्ध है और कवि (ज्ञानी) भी कहते हैं कि जो राम से विमुख हैं, उन्हें नरक में भी ठौर नहीं मिलती। सबके मन में यह संदेह हो रहा था कि हे विधाता ! राम का अयोध्या जाना होगा या नहीं। भरत को न तो रात को नींद आती है, न दिन में भूख ही लगती है। वे पवित्र सोच में ऐसे विकल हैं, जैसे नीचे (तल) के कीचड़ में डूबी हुई मछली को जल की कमी से व्याकुलता होती है।

(27)

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥
अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ॥
मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई॥

गुर पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ॥

अर्थ – (भरत सोचते हैं कि) माता के मिस से काल ने कुचाल की है। जैसे धान के पकते समय ईति का भय आ उपस्थित हो। अब राम का राज्याभिषेक किस प्रकार हो, मुझे तो एक भी उपाय नहीं सूझ पड़ता। गुरु की आज्ञा मानकर तो राम अवश्य ही अयोध्या को लौट चलेंगे। परन्तु मुनि वशिष्ठ तो राम की रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे। (अर्थात् वे राम की रुचि देखे बिना जाने को नहीं कहेंगे)। माता कौसल्या के कहने से भी रघुनाथ लौट सकते हैं; पर भला, राम को जन्म देनेवाली माता क्या कभी हठ करेगी ? मुझ सेवक की तो बात ही कितनी है ? उसमें भी समय खराब है (मेरे दिन अच्छे नहीं हैं) और विधाता प्रतिकूल है। यदि मैं हठ करता हूँ तो यह घोर कुकर्म (अधर्म) होगा, क्योंकि सेवक का धर्म शिव के पर्वत कैलास से भी भारी (निबाहने में कठिन) है। एक भी युक्ति भरत के मन में न ठहरी। सोचते-ही-सोचते रात बीत गई। भरत प्रातःकाल स्नान करके और प्रभु राम को सिर नवाकर बैठे ही थे कि ऋषि वशिष्ठ ने उनको बुलवा भेजा।

भरत गुरु के चरणकमलों में प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठ गए। उसी समय ब्राह्मण, महाजन, मंत्री आदि सभी सभासद आकर जुट गए।

(28)

बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा रामु स्वबस भगवानू॥
सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनमु जग मंगल हेतु॥
गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दलु दलन देव हितकारी॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि बिचार जियँ देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सब ही कें॥

राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ॥

अर्थ – श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठ समयोचित वचन बोले – हे सभासदों ! हे सुजान भरत ! सुनो। सूर्यकुल के सूर्य महाराज राम धर्मधुरन्धर और स्वतन्त्र भगवान हैं। वे सत्य प्रतिज्ञ हैं और वेद की मर्यादा के रक्षक हैं। राम का अवतार ही जगत के कल्याण के लिए हुआ है। वे गुरु, पिता और माता के वचनों के अनुसार चलनेवाले हैं। दुष्टों के दल का नाश करनेवाले और देवताओं के हितकारी हैं। नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थ को राम के समान यथार्थ (तत्त्व से) कोई नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, सभी कर्म और काल, शेष और (पृथ्वी एवं पाताल के अन्यान्य) राजा आदि जहाँ तक प्रभुता है, और योग की सिद्धियाँ, जो वेद और शास्त्रों में गाई गई हैं, हृदय में अच्छी तरह विचार कर देखो, (तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि) राम की आज्ञा इन सभी के सिर पर है (अर्थात् राम ही सबके एक मात्र महान महेश्वर हैं)। अतएव राम की आज्ञा और रुख रखने में ही हम सबका हित होगा। (इस तत्त्व और रहस्य को समझकर) अब तुम सयाने लोग जो सबको सम्मत हो, वही मिलकर करो।

(29)

सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥
सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे॥
भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥
दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जगु जाना॥

सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय बचन गुर उर उमगा अनुरागु॥

अर्थ – राम का राज्याभिषेक सबके लिए सुखदायक है। मंगल और आनन्द का मूल यही एक मार्ग है। (अब) रघुनाथ अयोध्या किस प्रकार चलें ? विचारकर कहो, वही उपाय किया जाए। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ की नीति, परमार्थ और स्वार्थ (लौकिक हित) में सनी हुई वाणी सबने आदरपूर्वक सुनी। पर किसी को कोई उत्तर नहीं आता, सब लोग भोले (विचार शक्ति से रहित) हो गए। तब भरत ने सिर नवाकर हाथ जोड़े। (और कहा –) सूर्यवंश में एक-से-एक अधिक बड़े बहुत-से राजा हो गए हैं। सभी के जन्म के कारण पिता-माता होते हैं और शुभ-अशुभ कर्मों को (कर्मों का फल) विधाता देते हैं। आपका आशीष ही एक ऐसा है, जो दुःखों का दमन करके, समस्त कल्याणों को सज देते है; यह जगत जानता है। हे स्वामी ! आप वही हैं, जिन्होंने विधाता की गति (विधान) को भी रोक दिया। आपने जो टेक टेक दी (जो निश्चय कर दिया) उसे कौन टाल सकता है ? अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं, यह सब मेरा अभाग्य है। भरत के प्रेममय वचनों को सुनकर गुरु के हृदय में प्रेम उमड़ आया।

(30)

तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लखन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥
मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ रामु भए राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥
कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥

अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवान॥

अर्थ – (वे बोले –) हे तात ! बात सत्य है, पर है राम की कृपा से ही। राम विमुख को तो स्वप्न में भी सिद्धि नहीं मिलती। हे तात ! मैं एक बात कहने में सकुचाता हूँ। बुद्धिमान लोग सर्वस्व जाता देखकर (आधे की रक्षा के लिए) आधा छोड़ दिया करते हैं। अतः तुम दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) वन को जाओ और लक्ष्मण, सीता और राम को लौटा दिया जाए। ये सुन्दर वचन सुनकर दोनों भाई हर्षित हो गए। उनके सारे अंग परमानन्द से परिपूर्ण हो गए। उनके मन प्रसन्न हो गए। शरीर में तेज सुशोभित हो गया। मानो राजा दशरथ जी उठे हों और राम राजा हो गए हों ! अन्य लोगों को तो इसमें लाभ अधिक और हानि कम

प्रतीत हुई। परन्तु रानियों को दुःख-सुख समान ही थे (राम-लक्ष्मण वन में रहें या भरत-शत्रुघ्न, दो पुत्रों का वियोग तो रहेगा ही), यह समझकर वे सब रोने लगीं। भरत कहने लगे – मुनि ने जो कहा, वह करने से जगतभर के जीवों को उनकी इच्छित वस्तु देने का फल होगा। (चौदह वर्ष की कोई अवधि नहीं,) मैं जन्मभर वन में वास करूँगा। मेरे लिए इससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है। राम और सीता हृदय की जाननेवाले हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप यह सत्य कह रहे हैं तो हे नाथ ! अपने वचनों को प्रमाण कीजिए (उनके अनुसार व्यवस्था कीजिए)।

(31)

भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भए बिदेहू॥
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥
गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावति नाव न बोहितु बेरा॥
औरु करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई॥
भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥
बोले मुनिबरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥

सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥

अर्थ – भरत के वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सारी सभा सहित मुनि वशिष्ठ विदेह हो गए (किसी को अपने देह की सुधि न रही)। भरत की महान महिमा समुद्र है, मुनि की बुद्धि उसके तट पर अबला स्त्री के समान खड़ी है। वह (उस समुद्र के) पार जाना चाहती है, इसके लिए उसने हृदय में उपाय भी ढूँढ़े ! पर (उसे पार करने का साधन) नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी नहीं पाती। भरत की बड़ाई और कौन करेगा ? तलैया की सीपी में भी कहीं समुद्र समा सकता है ? मुनि वशिष्ठ की अन्तरात्मा को भरत बहुत अच्छे लगे और वे समाज सहित राम के पास आए। प्रभु राम ने प्रणाम कर उत्तम आसन दिया। सब लोग मुनि की आज्ञा सुनकर बैठ गए। श्रेष्ठ मुनि देश, काल और अवसर के अनुसार विचार करके वचन बोले – हे सर्वज्ञ ! हे सुजान ! हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञान के भंडार राम ! सुनिए – आप सबके हृदय के भीतर बसते हैं और सबके भले-बुरे भाव को जानते हैं। जिसमें पुरवासियों का, माताओं का और भरत का हित हो, वही उपाय बतलाइए।

(32)

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥

सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु किएँ मुदित फुर भाषें॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथें मानि करौं सिख सोई॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा। भरत सनेहँ बिचारु न राखा॥
तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी॥
मोरें जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी॥

भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥

अर्थ – आर्त (दुखी) लोग कभी विचारकर नहीं कहते। जुआरी को अपना ही दाँव सूझता है। मुनि के वचन सुनकर रघुनाथ कहने लगे – हे नाथ ! उपाय तो आप ही के हाथ है। आपका रुख रखने में और आपकी आज्ञा को सत्य कहकर प्रसन्नतापूर्वक पालन करने में ही सबका हित है। पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षा को माथे पर चढ़ाकर करूँ। फिर हे गोसाईं ! आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब तरह से सेवा में लग जाएगा (आज्ञा पालन करेगा)। मुनि वशिष्ठ कहने लगे – हे राम ! तुमने सच कहा। पर भरत के प्रेम ने विचार को नहीं रहने दिया। इसीलिए मैं बार-बार कहता हूँ, मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश हो गई है। मेरी समझ में तो भरत की रुचि रखकर जो कुछ किया जाएगा, शिव साक्षी हैं, वह सब शुभ ही होगा। पहले भरत की विनती आदरपूर्वक सुन लीजिए, फिर उस पर विचार कीजिए। तब साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदों का निचोड़ (सार) निकालकर वैसा ही (उसी के अनुसार) कीजिए।

(33)

गुर अनुरागु भरत पर देखी। राम हृदयँ आनंदु बिसेषी॥
भरतहि धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी॥
बोले गुरु आयस अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगल मूला॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुअन भरत सम भाई॥
जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥
लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥

तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात॥

अर्थ – भरत पर गुरु का स्नेह देखकर राम के हृदय में विशेष आनन्द हुआ। भरत को धर्मधुरन्धर और तन, मन, वचन से अपना सेवक जानकर – राम गुरु की आज्ञा अनुकूल मनोहर, कोमल और कल्याण के मूल वचन बोले – हे नाथ ! आपकी सौगन्ध और पिता के चरणों की दुहाई है (मैं सत्य कहता हूँ कि) विश्वभर में

भरत के समान कोई भाई हुआ ही नहीं। जो लोग गुरु के चरणकमलों के अनुरागी हैं, वे लोक में (लौकिक दृष्टि से) भी और वेद में (परमार्थिक दृष्टि से) भी बड़भागी होते हैं ! (फिर) जिस पर आप (गुरु) का ऐसा स्नेह है, उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है ? छोटा भाई जानकर भरत के मुँह पर उसकी बड़ाई करने में मेरी बुद्धि सकुचाती है। (फिर भी मैं तो यही कहूँगा कि) भरत जो कुछ कहें, वही करने में भलाई है। ऐसा कहकर राम चुप हो रहे। तब मुनि भरत से बोले – हे तात ! सब संकोच त्यागकर कृपा के समुद्र अपने प्यारे भाई से अपने हृदय की बात कहो।

(34)

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥
लखि अपनें सिर सबु छरु भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥
पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहौं मैं काहा॥
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहूँ खेल जितावहिं मोही॥

महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पिआसे नैन॥

अर्थ – मुनि के वचन सुनकर और राम का रुख पाकर गुरु तथा स्वामी को भरपेट अपने अनुकूल जानकर सारा बोझ अपने ही ऊपर समझकर भरत कुछ कह नहीं सकते। वे विचार करने लगे। शरीर से पुलकित होकर वे सभा में खड़े हो गए। कमल के समान नेत्रों में प्रेमाश्रुओं की बाढ़ आ गई। (वे बोले –) मेरा कहना तो मुनिनाथ ने ही निबाह दिया (जो कुछ मैं कह सकता था वह उन्होंने ही कह दिया)। इससे अधिक मैं क्या कहूँ ? अपने स्वामी का स्वभाव मैं जानता हूँ। वे अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते। मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है। मैंने खेल में भी कभी उनकी रिस (अप्रसन्नता) नहीं देखी। बचपन में ही मैंने उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने भी मेरे मन को कभी नहीं तोड़ा (मेरे मन के प्रतिकूल कोई काम नहीं किया)। मैंने प्रभु की कृपा की रीति को हृदय में भली-भाँति देखा है (अनुभव किया है)। मेरे हारने पर भी खेल में प्रभु मुझे जिता देते रहे हैं। मैंने भी प्रेम और संकोचवश कभी सामने मुँह नहीं खोला। प्रेम के प्यासे मेरे नेत्र आज तक प्रभु के दर्शन से तृप्त नहीं हुए।

(35)

बिधि न सकेऊ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनीं समुझि साधु सुचि को भा॥

मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक काली॥
सपनेहूँ दोसक लेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥
बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। जारिउँ जायँ जननि कहि काकू॥
हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा॥
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥

साधु सभाँ गुर प्रभु निकट कहउँ सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ॥

अर्थ – परन्तु विधाता मेरा दुलार न सह सका। उसने नीच माता के बहाने (मेरे और स्वामी के बीच) अन्तर डाल दिया। यह भी कहना आज मुझे शोभा नहीं देता। क्योंकि अपनी समझ से कौन साधु और पवित्र हुआ है ? (जिसको दूसरे साधु और पवित्र मानें, वही साधु है।) माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु हूँ, ऐसा हृदय में लाना ही करोड़ों दुराचारों के समान है। क्या कोदों की बाली उत्तम धान फल सकती है ? क्या काली घोंघी मोती उत्पन्न कर सकती है ? स्वप्न में भी किसी को दोष का लेश भी नहीं है। मेरा अभाग्य ही अथाह समुद्र है। मैंने अपने पापों का परिणाम समझे बिना ही माता को कटु वचन कहकर व्यर्थ ही जलाया। मैं अपने हृदय में सब ओर खोज कर हार गया (मेरी भलाई का कोई साधन नहीं सूझता)। एक ही प्रकार भले ही (निश्चय ही) मेरा भला है। वह यह है कि गुरु महाराज सर्वसमर्थ हैं और सीताराम मेरे स्वामी हैं। इसी से परिणाम मुझे अच्छा जान पड़ता है। साधुओं की सभा में गुरु और स्वामी के समीप इस पवित्र तीर्थ स्थान में मैं सत्य भाव से कहता हूँ। यह प्रेम है या प्रपंच (छल-कपट) ? झूठ है या सच ? इसे (सर्वज्ञ) मुनि वशिष्ठ और (अंतर्यामी) रघुनाथ जानते हैं।

(36)

भूपति मरन प्रेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारीं। जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं॥
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू॥
अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी॥

तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि॥

अर्थ – प्रेम के प्रण को निबाहकर महाराज (पिता) का मरना और माता की कुबुद्धि, दोनों का सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जातीं। अवधपुरी के नर-नारी दुःसह ताप से जल रहे हैं। मैं ही इन सारे अनर्थों का मूल हूँ, यह सुन और समझकर मैंने सब दुःख सहा है। रघुनाथ लक्ष्मण और सीता के साथ मुनियों का-सा वेष धारणकर बिना जूते पहने पाँव-प्यादे (पैदल) ही वन को चले गए, यह सुनकर, शंकर साक्षी हैं, इस घाव से भी मैं जीता रह गया (यह सुनते ही मेरे प्राण नहीं निकल गए) ! फिर निषादराज का प्रेम देखकर भी इस वज्र से भी कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं)। अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जड़ जीव जीता रह कर सभी सहावेगा। जिनको देखकर रास्ते की साँपिनी और बीछी भी अपने भयानक विष और तीव्र क्रोध को त्याग देती हैं – वे ही रघुनन्दन, लक्ष्मण और सीता जिसको शत्रु जान पड़े, उस कैकेयी के पुत्र मुझको छोड़कर दैव दुःसह दुःख और किसे सहावेगा।

(37)

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी॥
सोक मगन सब सभाँ खभारू। मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू॥
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू॥
तात जायँ जियँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥

अर्थ – अत्यन्त व्याकुल तथा दुःख, प्रेम, विनय और नीति में सनी हुई भरत की श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोक में मग्न हो गए, सारी सभा में विषाद छा गया। मानो कमल के वन पर पाला पड़ गया हो। तब ज्ञानी मुनि वशिष्ठ ने अनेक प्रकार की पुरानी कथाएँ कहकर भरत का समाधान किया। फिर सूर्यकुलरूपी कुमुदवन के प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्रमा रघुनन्दन उचित वचन बोले – हे तात ! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीव की गति को ईश्वर के अधीन जानो। मेरे मत में (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालों और (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) तीनों लोकों के सब पुण्यात्मा पुरुष तुम से नीचे हैं। हृदय में भी तुम पर कुटिलता का आरोप करने से यह लोक (यहाँ के सुख, यश आदि) बिगड़ जाता है और परलोक भी नष्ट हो जाता है (मरने के बाद भी अच्छी गति नहीं मिलती)। माता कैकेयी को तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं, जिन्होंने गुरु और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है। हे भरत ! तुम्हारा नाम-स्मरण करते ही सब पाप, प्रपंच (अज्ञान) और समस्त अमंगलों के समूह मिट जाएँगे तथा इस लोक में सुन्दर यश और परलोक में सुख प्राप्त होगा।

(38)

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराएँ॥
मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना॥
तात तुम्हहि मैं जानउँ नीकें। करौं काह असमंजस जीकें॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी॥
तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥

मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु॥

अर्थ – हे भरत ! मैं स्वभाव से ही सत्य कहता हूँ, शिव साक्षी हैं, यह पृथ्वी तुम्हारी ही रखी रह रही है। हे तात ! तुम व्यर्थ कुतर्क न करो। वैर और प्रेम छिपाए नहीं छिपते। पक्षी और पशु मुनियों के पास (बेधड़क) चले जाते हैं, पर हिंसा करनेवाले बधिकों को देखते ही भाग जाते हैं। मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान का भंडार ही है। हे तात ! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ ? जी में बड़ा असमंजस (दुविधा) है। राजा ने मुझे त्याग कर सत्य को रखा और प्रेम-प्रण के लिए शरीर छोड़ दिया। उनके वचन को मेटते मन में सोच होता है। उससे भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। उस पर भी गुरु ने मुझे आज्ञा दी है। इसलिए अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता हूँ। तुम मन को प्रसन्न कर और संकोच को त्याग कर जो कुछ कहो, मैं आज वही करूँ। सत्य प्रतिज्ञ रघुकुल श्रेष्ठ राम का यह वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया।

(39)

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहूँ न कलेसू॥
मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाईं। लोक बेद भल भूप भलाईं॥
गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥
देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरुभारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥

अर्थ – हे तात ! तुम्हारी, मेरी, परिवार की, घर की और वन की सारी चिंता गुरु वशिष्ठ और महाराज जनक को है। हमारे सिर पर जब गुरु, मुनि विश्वामित्र और मिथिलापति जनक हैं, तब हमें और तुम्हें स्वप्न नें भी क्लेश नहीं है। मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि हम दोनों भाई पिता की आज्ञा का पालन करें। राजा की भलाई (उनके व्रत की रक्षा) से ही लोक और वेद दोनों में भला है। गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा (आज्ञा) का पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने पर पैर गड्ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता) । ऐसा विचार कर सब सोच छोड़कर अवध जाकर अवधिभर उसका पालन करो। देश, खजाना, कुटुंब, परिवार आदि सबकी जिम्मेदारी तो गुरु की चरण रज पर है। तुम तो मुनि वशिष्ठ, माताओं और मंत्रियों की शिक्षा मानकर तदनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन (रक्षा) भर करते रहना । तुलसीदास कहते हैं – (राम ने कहा –) मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक (अकेला) है, परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है।

(40)

राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥
बंधु प्रबोधुकीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥
भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥
कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥

मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ॥

अर्थ – राजधर्म का सर्वस्व (सार) भी इतना ही है। जैसे मन के भीतर मनोरथ छिपा रहता है। रघुनाथ ने भाई भरत को बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु कोई अवलम्बन पाए बिना उनके मन में न संतोष हुआ, न शान्ति। इधर तो भरत का शील (प्रेम) और उधर गुरुजनों, मंत्रियों तथा समाज की उपस्थिति ! यह देखकर रघुनाथ संकोच तथा स्नेह के विशेष वशीभूत हो गए। (अर्थात् भरत के प्रेमवश उन्हें पाँवरी देना चाहते हैं, किन्तु साथ ही गुरु आदि का संकोच भी होता है।) आखिर (भरत के प्रेमवश) प्रभु राम ने कृपा कर खड़ाऊँ दे दीं और भरत ने उन्हें आदरपूर्वक सिर पर धारण कर लिया। करुणानिधान राम के दोनों ख़ड़ाऊँ प्रजा के प्राणों की रक्षा के लिए मानो दो पहरेदार हैं। भरत के प्रेमरूपी रत्न के लिए मानो डिब्बा है और जीव के साधन के लिए मानो राम-नाम के दो अक्षर हैं। रघुकुल (की रक्षा) के लिए दो किवाड़ हैं। कुशल (श्रेष्ठ) कर्म करने के लिए दो हाथ की भाँति (सहायक) हैं। और सेवारूपी श्रेष्ठ धर्म के सुझाने के लिए निर्मल नेत्र हैं। भरत इस अवलम्ब के मिल जाने से परम आनन्दित हैं। उन्हें ऐसा ही सुख हुआ, जैसा सीताराम के रहने

से होता। भरत ने प्रणाम करके विदा माँगी, तब राम ने उन्हें हृदय से लगा लिया। इधर कुटिल इन्द्र ने बुरा मौका पाकर लोगों का उच्चाटन कर दिया।

❖❖❖

केशवदास

रामचन्द्रिका

रावण-अंगद-संवाद

सोलहवाँ प्रकाश

दोहा

यह वर्णन है षोडशे, केशवदास प्रकाश।
रावण अंगद सों विविध, शोभित बचन विलास॥

मूल

(1)

अंगद कूदि गये जहाँ, आसनगत लंकेश।
मनु मधुकर करहाट पर, शोभित श्यामल वेष॥

शब्दार्थ – आसनगत = सिंहासन पर बैठा हुआ। करहाट = कमल की छतरी, जो पहले पीली होती है, फिर बीज पकने पर हरी हो जाती है।

नागराज

प्रतिहार –

(2)

पढ़ौ विरंचि मौन बेद जीव सोर छंडि रे।
कुबेर बेर कै कही न यज्ञ भीर मंडि रे।
दिनेश जाय दूरि बैठि नारदादि संगही।
न बोलु चन्द मन्द बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं॥

शब्दार्थ – जीव = बृहस्पति। सोर = बकवाद। बेर = बार, दफा। न यक्ष भीर मंडिरे = यक्षों की भीर न लगाओ।

चित्रपदा

(3)

अंगद यों सुनि बानी। चित्त महा रिस आनी॥
ठेलि कै लोग अनैसे। जाय सभा महँ बैसे॥

शब्दार्थ – ठेलि के = धक्का दे-देकर, किनारे कर के। लोग अनैसे = (अनिष्ट लोग) निश्चर (रावण के नौकर-चाकर)। बैसे = बैठे, जाकर बैठ गए।

हरिगीतिका

(4)

रावण – कौन हो पठये सो कौने ह्याँ तुम्हैं कह काम है?
अंगद– जाति बानर, लंकनायक दूत, अंगद नाम है॥
रावण – कौन है वह बाँधि कै हम देह पूँछ सबै दही।
अंगद– लंक जारि सँहारि अक्ष गयो सो बात वृथा कही॥

(5)

महोदर

कौन भाँति रहौ तहाँ तुम? (अंगद) राज प्रेषक जानिये।
लंक लाइ गयो जो बानर कौन नाम बखानिये॥
मेघनाथ जो बाँधियो वहि मारियो बहुधा तबै।
लोक लाज दुर्‌यो रहै अति जानिये न कहाँ अबै॥

मूल

(6)

कौन के सुत? बालि के वह कौन बालि न जानिये?
काँख चाँपि तुम्हैं जो सागर सात न्हात बखानिये॥
है कहाँ वह? बीर अंगद देव लोक बताइयो।
क्यों गयो? रघुनाथ बान विमान बैठि सिधाइयो॥

मूल

(7)

लंकनायक को? विभीषण देवदूषण को दहै।
मोहि जीवत होहि क्यों ? जग तोहि जीवित को कहै॥
मोहि को जग मारिहै? दुरबुद्धि तेरिय जानिये।
कौन बात पठाइयो करि बीर बेगि बखानिये॥

शब्दार्थ – देव दूषण = देवताओं का शत्रु (अर्थात् रावण)।

सवैया

अंगद –

(8)

श्रीरघुनाथ को बानर केशव आयो हो एक न काहु हयो जू।
सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट की देह बिहारि गयो जू॥
सीय निहारि सँहारि कै राक्षस शोक अशोकबनीहि दयो जू।
अक्ष कुमारहि मारकै लंकहि जारिहै नीकेहि जात भयो जू॥

शब्दार्थ – आयो हो = आया था। हयो = हन्यो, मारा। सागर को मद झारि = समुद्र का (अनुल्लंघनीयता का) अहंकार गिराकर। चिकारि = गरज-गरज कर (चुपचाप चोरी से नहीं)। त्रिकूट = वह पर्वत जिस पर लंकापुरी स्थित थी। बिहारि गयो = सर्वत्र घूम गया। अशोक बनी = अशोक वाटिका। नीकेहि = सही-सलामत (बिना किसी हानि के)।

गंगोदक

अंगद –

(9)

राम राजान राज आये यहाँ धाम तेरे महाभाग जागै अब।
देवि मन्दोदरी कुम्भकर्णादि दै मित्र मंत्री जिते पूछि देखा सबै॥
राखिये जाति को पाँति को वंश को गोत को साधिये लोक परलोक को।
आनि कै पाँ परो, देस लै कोष लै, आसुही ईश सीता चलैं ओक को॥

शब्दार्थ – देवि = पटरानी (जिसके साथ राज्याभिषेक हो उस स्त्री की संज्ञा, 'देवी' होती है)। कुम्भकर्णादि दै = कुम्भकर्ण इत्यादि। आनिकै = अपने-अपने घर लाकर। देस लै कोष लै = तू अपना देश कोष ले, अपने पास रख (अर्थात् राम जी तेरा देश कोष लेने नहीं आये)। आसुही = शीघ्र ही (सीता को पाते ही।) ईश = हमारे मालिक (रामजी)। ओक = देश, घर।

गंगोदक

रावण –

(10)

लोक लोकेश स्यों जो जु ब्रह्मा रचे,
आपनी आपनी सीव सो सो रहैं।
चारि बाहैं धरे विष्णु रक्षा करैं,
बात साँची यहै बेद बानी कहै।
ताहि भ्रूभंग ही देव देवेश स्यों,
विष्णु ब्रह्मादि दै रुदजू संहरै।
ताहि हौं छोड़ि कै पायँ काके परौं,
आज संसार तो पायँ मेरे परै॥

शब्दार्थ – स्यों = सहित। जो जु = जो जो। सींव = सीमा, मर्यादा। भ्रभंग ही = जरा टेढ़ी नजर करते ही, तनिक कोध से। देवेश = इन्द्र। हौं = मैं।

मदिरा सवैया

(11)

राम को काम कहा ? रिपु जीतहिं, कौन कबे रिपु जीत्यौ कहाँ।
बालि बली, छल सों, भृगुनन्दन गर्व हर्‌यो द्विज दीन महा॥
दीन सु क्यों छिति हत्यो बिन प्राणन हैहयराज कियो।
हैहय कौन ? वहै बिसर्‌यो जिन खेलत ही तोहि बाँधि लियो॥

शब्दार्थ – भृगुनन्दन = परशुराम। छिति छत्र हत्यो = पृथ्वी भरके सब क्षत्री मार डाले। हैहयराज = कार्तवीर्य सहस्रार्जुन। (मंडलाधिपति)।

मदिरा सवैया

अंगद –

(12)

सिंधु तर्‌यो उनको बनरा तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बाँदर बाँधत सो न बन्ध्यो उन बारिधि बाँधि कै बाट करी॥
श्रीरघुनाथ प्रताप की बात तुम्हें दसकंठ न जानि परी।
तेलहु तूलहु पूँछि जरी न जरी, जरी लंक जराइ जरी॥

शब्दार्थ – तुम पै = तुमसे (यह रूप बुंदेलखंडी है) गई न तरी = लाँघी न गई। बाट = रास्ता। जरी = जड़ी हुई, युक्त। जरी = जली। जराइ जरी = नग जटित (सोने और रत्नों की बनी)।

मदिरा सवैया

मेघनाद –

(13)

छाँड़ि दियो हम ही बनरा वह पूँछ की आगिन लंक जरी।
भीर में अक्ष मर्‌यो चपि बालक बादिहि जाय प्रशस्ति करी॥
ताल बिधे अरु सिंधु बँध्यो यह चेटक विक्रम कौन कियो।
बानर को नर को बपुरा पल में सुरनायक बाँधि लियो॥

शब्दार्थ – आगिन = अग्नि। चपि = दबकर। बादहि = व्यर्थ ही। प्रशस्ति = प्रशंसा, बड़ाई। बिधे = नाथे। चटक = धोखे का चमत्कार। विक्रम = बलप्रदर्शक करतूत। बपुरा = दीन-हीन। सुरनायक = इन्द्र।

सवैया

अंगद –

(14)

चेटक सों धनु भंग कियो, तन रावण के अति ही बलु हो।
बाण समेते रहे पचिकै तहँ जा सँग पै न तज्यौ थलु हो॥
बाण सु कौन? बली बलिको सुत, वै बलि बावन बाँधि लियो।
वेई सु तौ जिनकी चिर चेरिन नाच नचाइ कै छाँड़ि दियो॥

शब्दार्थ – बलु हो = बल था। रहे पचि कै = हैरान हो गये थे, परिश्रम करते-करते हार गये थे। चिर = बूढ़ी।

सवैया

रावण –

(15)

नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपिपुंज तिहारे।
आठहु आठ दिशा बलि दै, अपनो पदु लैं, पितु जालगि मारे॥
तोसे सपूतहि जाय कै बालि अपूतहि की पदवी पगु धारे।
अंगद संगलै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हते बपु मारे॥

शब्दार्थ – आठहु = नील, सुखेन, हनुमान, नल, सुग्रीव, जामवन्त और राम तथा लक्ष्मण। पदु = उचित हक (बदला)। जाय कै = पैदा करके। अपूतन की पदवी = निपुत्री की गति। पगु धारे = गये, प्राप्त हुए। बपु मारे = बाप को मारने वाले को (राम को)।

दोहा

(16)

जो सुत अपने बाप को, बैर न लेई प्रकाश।
तासों जीवत ही मर्‌यो, लोग कहैं तजि आस॥

दोहा

अंगद –

(17)

इनको बिलगु न मानिये, कहि केशव पल आधु।
पानी पावक पवन प्रभु, ज्यों असाधु त्यों साधु॥

शब्दार्थ – बिलगु मानना = बुरा मानना। साधु = भला आदमी।

द्रुतविलम्बित

रावण –

(18)

उरसि अंगद लाज कछू गहौ। जनक घातक बात वृथा कहौ।
सहित लक्ष्मण रामहिं संहरौ। सकल बानर राज तुम्हैं करौं॥

शब्दार्थ – बात वृथा कहौ = व्यर्थ बड़ाई करते हो।

निशिपालिका

अंगद –

(19)

शत्रु, सम, मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
दूतविधि नूत कबहूँ न उर आनहीं॥
आप मुख देखि अभिलाष अभिलाषहू।
राखिभुज सीस तब और कहँ राखहू॥

शब्दार्थ – सम = उदासीन (न शत्रु न मित्र)। दूतविधि नूत = तुम्हारी यह नवीन दूतविधि (तुम्हारी यह तोड़-फोड़ की नवीन भेद नीति)।

इन्द्रवज्रा

रावण –

(20)

मेरी बड़ी भूल कहा कहौं रे। तेरी कह्यौ दूत सबै सहौं रे॥
वै जो सबै चाहत तोहि मार्‌यो। मारो कहा तोहि जो दैव मार्‌यो॥

उपेन्द्रवज्रा

अंगद –

(21)

नराच श्रीराम जहीं धरैंगे। अशेष माथे कटि भू परैंगे।
शिखा शिवा स्वान गहे तिहारी। फिरैं चहूँ ओर निरै बिहारी॥

शब्दार्थ – नराच = (नाराच) बाण। अशेष = सब। शिवा = शृगाली, स्यारनी। निरै बिहारी = (रावण के प्रति संबोधन है) हे नरक बिहारी रावण, हे पापी रावण !

भुजंगप्रयात

रावण –

(22)

महामीचु दासी सदा पाँइ धोवै। प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै।
छपानाथ लीन्हें रहैं छत्र जाको। करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको॥

शब्दार्थ – प्रतिहार = द्वारपाल। सूर = सूर्य। कृपा जोवै = कृपा का अभिलाषी रहता है। छपानाथ = चन्द्रमा।

मूल

(23)

सका मेघमाला शिखी पाककारी। करै कोतवाली महादंडधारी॥
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके। कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके॥

शब्दार्थ – सका = (फारसी शब्द 'सक्का') भिश्ती, पानी भरने वाला। शिखी = अग्नि। पाककारी = रसोइया, बावरची। कोतवाली = पहेरेदारी। महादण्डधारी = यमराज। बापुरो = बेचारा, दीन-हीन।

मत्तगयंद सवैया

अंगद –

(24)

पेट चढ्यो पलना पलका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ्यो रे।
चौक चढ्यो चित्रसारि चढ्यो गजबाजि चढ्यो गढ़गर्व चढ्यो रे॥
व्योम विमान चढ्योइ रह्यौ कहि केशव सो कबहूँ न पढ्यो रे।
चेतत नाहि रह्यौ चढ़िचित्त सो चाहत मूढ़ चिताहू चढ्यो रे॥

शब्दार्थ – पेट चढ्यो = गर्भ में आकर माता के पेट पर चढ़ा। पलका = पलंग। पालकी चढ़ा = (विवाह समय में)। चौक चढ्यो = विवाह चौक। चित्रसारी = रंगमहल। व्योम विमान = पुष्पक विमान। सो कबहूँ न पढ्यो = उस ईश्वर का नाम कभी न जपा। चित्त चढ़ि रह्यौ = मन में अहंकार भर रहा है। चिता हू चढ्यो चाहत = मरने का समय आ गया (तिस पर भी)।

भुजंगप्रयात

रावण –

(25)

निकार्‌यो जु भैया लियो राज जाको।
दियो काढ़ि कै जू कहा त्रास ताको॥
लिये बानराली कहौ बात तोसों।
सु कैसे जुरे राम संग्राम मोसों॥

शब्दार्थ – निकार्‌यो = घर से दूर भेजा हुआ। दियो काढ़ि कै = (बुंदेलखंडी बोल-चाल) निकाल दिया। बानराली = बानरों की सेना। जुरै = सामने आवै।

मत्तगयंद सवैया

अंगद –

(26)

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ कुठाउँ बिलैहैं।
तात न मात न पुत्र न मित्र न बित्त न तीय कहूँ सँग रैहैं॥

केशव काम के राम बिसारत, और निकाम रे काम न ऐहैं।
चेति रे चेति अजौं चित अंतर अंतक लोक अकेलोई जैहैं॥

शब्दार्थ – न = और। कुठाउँ बिलैहैं = इसी बुरे ठाम (संसार) में विलीन हो जायँगे। बित्त = धन। कहुँ = कभी। काम के = अपना हितैषी। काम न ऐहैं = कुछ भलाई न कर सकेंगे। चित्त अन्तर = चित्त में। अन्तक लोक = यमलोक।

भुजंगप्रयात

रावण –

(27)

डरै गाय बिप्रे अनाथै जो भाजै। पर द्रव्य छोड़ै पर स्त्रीहि लाजै॥
पर द्रोह जासों न होवे रती को। सो कैसे लरै बेष कीन्हें जती को॥

दोहा

(28)

गेंद कर्‌यों मैं खेल को, हरिगिरि केशोदास।
सीस चढ़ाये आपने, कमल समान सहास॥

शब्दार्थ – हरिगिरि = कैलाश। सहास = प्रसन्नतापूर्वक।

दंडक

अंगद –

(29)

जैसो तुम कहत उठायो एक हरगिरि,
ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं।
काटे जो कहत सीस काटत घनेरे घाघ,
भगर के खेल क्यों सुभट पद पावहीं।
जीत्यो जो सुरेस रण शाप ऋषिनारि ही,
काम समझाहु हम द्विज नाते समझावहीं।
गहौ राम पायँ सुख पाय करै तपि तप,
सीता जू को देहि देव दुंदुभी बजावहीं॥

शब्दार्थ – हरगिरि = कैलाश। घनेरे = बहुत से। घाघ = बाजीगर, इन्द्रजालिक। भगर = बालकों का एक खेल जिसमें दो दल होते हैं। पहले दल का एक बालक दौड़ता हुआ दूसरे दल के किसी बालक को छूने का उद्योग करता है। यदि उसने किसी को छू लिया और उसने उसे पकड़ न लिया, तो वह छुआ बालक 'मृत' कहा जाता है। इस खेल को इस देश में साधारणत: 'कबड्डी' वा 'बैजला' कहते हैं। सुरेश = इन्द्र। ऋषिनारि = अहल्या। द्विज नाते = तुझे ब्राह्मण और विद्वान् समझ कर। करै तपी तप = हे तपस्वी ! अब तुम तप करो (बूढ़े हो चुके अब तपस्या करने का समय है)।

वंशस्थ

रावण –

(30)

तपी जपी विप्रन छिप्रही हरौं। अदेव द्वेषी सब देव संहरौं।
सिया न देहौं यह नेम जी धरौं। अमानुषी भूमि अबानरी करौं॥

शब्दार्थ – छिप्र = शीघ्र। अदेव द्वेषी = निश्वरों के शत्रु। अमानुषी = मनुष्यों से रहित। अबानरी = बानर विहीन।

मत्तगयंद सवैया

अंगद –

(31)

पाहन ते पतिनी करि पावन टूक कियो धनुहू हर को रे।
छत्र विहीन करी छन में छिति गर्व हर्‌यो तिनके बर को रे॥
पर्वत पुंज पुरैन के पात समान तरे अजहूँ धरको रे।
होयँ नरायन हू पै न ये गुन कौन यहाँ नर बानर को रे॥

शब्दार्थ – पुरैन = पुरइन (कमल)। अजहूँ = इतने पर भी। धरको = धड़का, शंका। गुन = काम। नर बानर को = नर बानर का सन्तान।

चंचरी

रावण –

(32)

देहिं अंगद राज तोकहँ मारि बानरराज को।
बाँधि देहिं विभीषणै अरु फोरि सेतु समाज को॥
पूँछि जारहिं अक्षरिपु की पायँ लागहिं रुद्र के।
सीय का तब देहुँ रामहिं पार जायँ समुद्र के॥

शब्दार्थ – बानरराज = सुग्रीव। अक्षरिपु = हनुमान।

चंचरी

अंगद –

(33)

लंक लाय दियो बली हनुमन्त संतन गाइयो।
सिंधु बाँधन सोधि कै नल छीर छीट बहाइयो॥
ताहि तोहि समेत अंध उखारि हौं उलटी करौं।
आजु राज कहाँ विभीषण बैठिहैं तेहि ते डरौं॥

शब्दार्थ – लाय दियो = जला गया है। सोधि कै = अच्छी तरह से। छीर = पानी। अन्ध = मूर्ख। हौं = मैं।

दोहा

(34)

अंगद रावण को मुकुट, लै करि उड़ो सुजान।
मनो चल्यो यमलोक को, दससिर को प्रस्थान॥

शब्दार्थ – दससिर = रावण। प्रस्थान = वह वस्तु जो यात्रा-दोष निवारणार्थ शुभ मुहूर्त में स्थानान्तर में रख दी जाती है।

॥ सोलहवाँ प्रकाश समाप्त ॥

❖❖❖

बिहारी

दोहा

(1)

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परैं स्यामु हरित-दु ति होइ॥

शब्दार्थ – भव-बाधा = संसारिक विघ्न, जन्म-मरण का दुःख । नागरि = सुचतुरा। झाँईं = 1. परछाहीं, आभा, 2. झाँकी, झलक, 3. ध्यान। परैं = 1. तन पर पड़ने से, 2. दृष्टि में पड़ने से, 3. हृदय में पड़ने से। स्यामु = 1. श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्णचन्द्र, 2. श्रीकृष्णचन्द्र, 3. काले रंग वाला पदार्थ अर्थात् कल्मष, फाटक, दुःख, दारिद्रादि, जिनका रंग कवि परिपाटी में काला नियत है। हरित-दुति = 1. हरे रंग वाला, 2. हरा-भरा, डहडहा अर्थात् प्रसन्न-वदन, 3. हृतद्युति, गतद्युति, हतप्रभ अर्थात् तेज-हीन, प्रभा-शून्य, अथवा भयंकरता-रहित।

(2)

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन-बिरदु बारक बारनु तारि॥

शब्दार्थ – अनाकनी = अनसुनी। आनाकानी देना = बात को सुनकर भी न सुनना । फीकी = प्रभाव-रहित। गुहारि = पुकार, कातर प्रार्थना। तारन-बिरदु = भवसागर से उबारने का यश, तारनेवाले होने की विख्याति। बारक = एक बार ही, सर्वथा। बारनु = हाथी।

(3)

अजौ तर्‌यौना हीं रह्यौ श्रुति सेवत इक-रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कैं संग॥

शब्दार्थ – अजौ = अद्यापि, आज तक भी, अब तक भी। तर्‌यौना = 1. कर्णफूल (अधोवर्ती) 2. तरा नहीं। श्रुति = 1. कान, 2. वेद। इकरंग = 1. एक ढंग से, ज्यों का त्यों, 2. अविच्छिन्न रूप से। नाक-बास = 1. नासिका का निवास, 2. स्वर्ग-निवास। बेसरि = 1. नासिका-भूषण विशेष 2. खच्चरी अर्थात् महाअधम प्राणी। मुकुतनु = 1. मुक्ताओं, 2. जीवन मुक्त सज्जनों, महात्माओं।

(4)

तो पर वारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उर बसी ह्वै उरबसी-समान॥

शब्दार्थ – वारौं = निछावर करूँ। उरबसी = उर्वशी नामक अप्सरा। सुजान = चतुर। उर बसी = हृदय में बसी। ह्वै = होकर। उरबसी = गले में पहनने का एक आभूषण जो हृदयप्रदेश तक लटकता है, हैकल, माला या हार।

(5)

कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिबो, मुरारि।
बीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहिं तारि॥

शब्दार्थ – बिरदु = प्रशस्ति, ख्याति, कीर्ति। मुरारि = श्रीकृष्ण। बीधे = बिद्ध हुए, उलझे। गीधे = ललचाए हुए, परचे हुए। गीधहिं = गिद्ध को, संपाती गिद्ध को। तारि = उद्धार करके।

(6)

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं, नैननु हीं सब बात॥

शब्दार्थ – कहत = अनुनय-विनय। नटत = अस्वीकृति, नकार। रीझत = मान-मनौवल, मनवार। खिझत = खीजना। मिलत = नयनों का नयनों से मिलना। खिलत = पुलकित होना। लजियात = लजाना। भौन = भवन। नैननु हीं सब बात = नयनों का नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण।

(7)

नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं बिकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बँध्यौ, आगैं कौन हवाल॥

शब्दार्थ – परागु = पुष्परज। मधु = मकरंद। बिकासु = खिलावट। अली = भौंरा। बँध्यौ = उलझ गया है, घायल हुआ है, लुब्ध हुआ है। हवाल = दशा।

सोरठा

(8)

मंगल बिंदु सुरंगु, मुखु ससि, केसरि आड़ गुरु।
इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन-जगत॥

शब्दार्थ – सुरंगु = सुन्दर रंगवाला, लाल रंगवाला। आड़ = आड़ा तिलक। नारी = 1. नारी, स्त्री, 2. चंडा (समीरा आदि सात नाड़ियों में से एक नाड़ी)। गुरु = बृहस्पति। रस = अनुराग, शृंगार रस, 2. जल। किय = कियौ। लोचन-जगत = नयन रूपी जगत।

दोहा

(9)

रससिंगार-मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु नैन॥

शब्दार्थ – रससिंगार-मंजनु किए= शृंगार रसोचितहाव, भाव, कटाक्षादि में निमग्न, अथवा उनको माँजे हुए अर्थात् उनमें दक्ष। कंजनु = कंजों को। भंजनु = मान-भंग, पराजय। अंजनु रंजनु हूँ बिना = अंजनु रंगने (लगाने) के बिना भी। खंजनु = खंजों ('खंज' शब्द का बहुवचन) को। गंजनु = तिरस्कार।

(10)

साजे मोहन-मोह कौं, मोहीं करत कुचैन।
कहा करौं, उलटे परे टोने लोने नैन॥

शब्दार्थ – साजे = किसी कार्य विशेष के उपयुक्त बनाए। मोहन = श्रीकृष्ण। मोहीं मुझे ही। कुचैन = विकल, व्याकुल। टोने = जादू। लोने = लुनाए हुए, लवण दिये हुए, लवण द्वारा तुष्ट किये हुए, नायक के लावण्य द्वारा उसके पक्ष में किये हुए।

(11)

कहा भयौ, जो बीछुरे, मो मनु तोमन-साथ।
उड़ी जाउ कित हूँ, तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ॥

शब्दार्थ – बीछुरे = बिछुड़ गये। मो = मेरा। तो = तेरा। कित हूँ = कहीं भी। तऊ = तो भी। गुड़ी = गुड्डी, पतंग। उड़ाइक = उड़ानेवाला।

(12)

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु जग-नाइक, जग-बाइ॥

शब्दार्थ – टेरतु = पुकार रहा हूँ। जग-बाइ = संसार की हवा अर्थात् संसार का बुरा प्रभाव।

(13)

पत्रा हीं तिथि पाइयै वा घर कैं चहुँ पास।
नितप्रति पून्यौई रहै आनन-ओप-उजास॥

शब्दार्थ – पत्रा = तिथि पत्र। चहुँ पास = चारों ओर। नितप्रति = सदैव। पून्यौ = पूर्णिमा। आनन = मुख। ओप = चमक। उजास = प्रकाश।

(14)

तंत्री-नाद कबित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग॥

शब्दार्थ – तंत्री-नाद = वीणा इत्यादि का मधुर स्वर। कबित्त-रस = काव्य का स्वाद। सरस राग = रसीला स्नेह अथवा रसीला गान। रति-रंग = प्रीति का अथवा स्त्री-संग का आनन्द। अनबूड़े = अधबूड़े, जो पूरी तरह से नहीं डूबे हैं। बूड़े = डूबे, नष्ट हुए। तरे = तर गये, पार हो गये। बूड़े = निमग्न हो गए, लिप्त हो गए। सब अंग = सर्वांग, पूर्ण रीति से।

(15)

मकराकृति गोपाल कैं सोहत कुंडल कान।
धर्‌यौ मनौ हिय-धर समरु, ड्यौढ़ी लसत निसान॥

शब्दार्थ – मकराकृति = मकर की आकृति के। कुंडल = कानों में पहनने का भूषण विशेष। धर्‌यौ = पकड़ा, अपने अधिकार में किया। हिय-धर = हृदय रूपी धरा अर्थात् देश। समरु = स्मर, कामदेव। ड्यौढ़ी = द्वार पर भीतर की ओर बनी दो भीतें। लसट = विलास करता है, लहराता है, फहराता है। निसान = निशान, चिह्नयुक्त ध्वजा।

(16)

खौरि-पनिच भृकुटी-धनुषु बधिकु-समरु, तजि कानि ।
हनतु तरुन-मृग तिलक-सर सुरक-भाल, भरि तानि ॥

शब्दार्थ – खौरि = खौरि अथवा खौर उस आड़े तिलक को कहते हैं, जो बीच में से खुरचा हुआ होता है । ललाट पर चंदन का आड़ा टीका, ललाट पर चन्दन लेपकर उँगलियों से खरोंचने पर खौर-तिलक बनता है । पनिच = पतंचिका, प्रत्यंचा, धनुष की डोरी । खौरि-पनिच = 'खौरि है पनिच जिसमें ऐसा', 'खौरि-पनिच' भृकुटी धनुष का विशेषण है । बधिक = व्याध, शिकारी । समरु = स्मर = कामदेव । कानि = रुकावट, रोक-टोक । सुरक = सुरक नाक पर उस तिलक को कहते हैं, जो भाल की आकृति का होता है । यह तिलक का वह भाग होता है जो नाक पर लगा होता है । भाल = भल्ल, बाण अथवा भाले का फल । सुरक-भाल = 'सुरक है भाल जिसमें ऐसा', 'सुरक-भाल' तिलक-सर का विशेषण है । भरि तानि = भरपूर तानकर ।

(17)

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥

शब्दार्थ – अनुरागी = प्रेमी, अनुराग-युक्त । कवि-समय के अनुसार अनुराग का रंग लाल माना जाता है अतः 'अनुरागी' का अर्थ लाल रंग वाला भी होता है । गति = चाल, रीति, व्यवस्था ।

(18)

जपमाला, छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु ।
मन-काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु ॥

शब्दार्थ – जपमाला = जपने की माला । छापैं = छापे से, तप्त मुद्रा इत्यादि से । सरै = सधता है । मन-काँचै = कच्चे मन वाला ही, बिना सच्ची भक्ति वाला ही । साँचै = सच्चे ही से, सच्ची भक्ति ही से । राँचै = रीझते हैं, रंजित होते हैं, प्रसन्न होते हैं ।

(19)

मोहनि-मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ ।
बसतु सु चित-अन्तर, तऊ प्रतिबिंबितु जग होइ ॥

शब्दार्थ – मोहनि-मूरति = मोहने वाली मूर्ति है जिसकी ऐसे। 'मोहनि-मूरति' स्याम शब्द का विशेषण है। जोइ = देखना। सुचित = निर्मल चित्त, स्वच्छ हृदय। चित-अन्तर = हृदय में। प्रतिबिम्बित = झलकती है।

सोरठा

(20)

मैं समुझ्यौ निरधार, यह जगु काँचौ काँच सौ।
एकै रूप अपार प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ॥

शब्दार्थ – निरधार = निश्चित रूप से। काँचो = कच्चा, क्षणभंगुर।

दोहा

(21)

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग-पग होत प्रयागु॥

शब्दार्थ – ब्रज-केलि = ब्रजमण्डल की लीलाएँ। निकुंज-मग = कुंजों के बीच का रास्ता। प्रयागु = तीर्थराज। निकुंज = लताओं के आपस में मिलकर तन जाने से उनके नीचे जो रिक्त स्थान बन जाते हैं, उन्हें निकुंज वा कुंज कहते हैं, लता-वितान।

(22)

औंधाई सीसी, सु लखि बिरह-बरनि बिललात।
बिच हीं सूखि गुलाबु गौ, छीटौ छुई न गात॥

शब्दार्थ – औंधाई = उलट (उँड़ेल) दी। बरनि = जलन, तपन। बिललात = विकलता से दीन स्वर में रोती-कलपती है, व्याकुल हो बक-झक करती है। गुलाबु = गुलाब-जल। छीटौ = एक छींटा भी। गात = देह।

(23)

लई सौंह सी सुनन की, तजि मुरली, धुनि आन।
किए रहति नित रातिदिनु कानन-लागे कान॥

शब्दार्थ – सौंह = शपथ, सौगन्ध। आन = अन्य, दूसरा। किए रहति = (सुनने की) चाह लगाये रहती है। कानन = जंगल। लागे = लगाये।

(24)

सीस-मुकुट, कटि-काछनी, कर-मुरली, उर-माल।
इहिं बानक मो मन सदा बसौ, बिहारी लाल॥

शब्दार्थ – कटि = कमर। बानक = बाना, बनाव, साज, वेष, सजधज। बिहारीलाल = श्रीकृष्णचन्द्र।

(25)

सखि, सोहति गोपाल कैं उर गुंजन की माल।
बाहिर लसति मनौ पिए दावानल की ज्वाल॥

शब्दार्थ – गुंजन = गुंजा, घुँघची, जंगली लता का एक फल विशेष, जो लाल मूँगे की तरह छोटा होता है; उसकी माला सुन्दर होती है। लसति = शोभती है। दावानल = दावाग्नि, जंगल में लगी हुई आग, दावानल-सदृश विरहाग्नि। ज्वाल = आग की लाल लपट।

(26)

इत आवति चलि, जाति उत चली, छसातक हाथ।
चढ़ी हिंडौरैं सैं रहै लगी उसासनु साथ॥

शब्दार्थ – इत = इधर। उत = उधर। चली = चलायमान या विचलित होकर या झोंके में पड़कर, खिंचकर। छसातक = छह-सात का अनुमान। हिंडौरैं सैं = हिंडोले-से किसी पदार्थ पर, मानो हिंडोले पर। उसासनु = दुःख के कारण निकली हुई आह-भरी लम्बी साँस, जिसे दीर्घ निःश्वास, शोकोच्छवास, निसाँस आदि भी कहते हैं।

(27)

भूषन-भारु सँभारिहै क्यौं इहिं तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं सोभा हीं कैं भार॥

शब्दार्थ – सुकुमार = नाजुक। सूधे = सीधे। धर = धरा, पृथ्वी।

(28)

कहत सबै, बेंदी दियैं आँकु दसगुनौ होतु।
तिय-लिलार बेंदी दियैं अगिनितु बढ़तु उदोतु॥

शब्दार्थ – आँकु = अंक, गिनती लिखने के निमित्त सांकेतित अक्षर। लिलार = ललाट। अगिनितु = असंख्य। उदोतु = उद्योत, 1. प्रकाश, शोभा, कान्ति, 2. अंक का अभिप्राय अर्थात् मूल्य।

(29)

लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

शब्दार्थ – सबी = (अरबी शब्द – सबी) यथार्थ चित्र। गरब गरूर = अभिमान। केते = कितने। चितेरे = चित्रकार। कूर = विदलित अथवा विकृत बुद्धिवाले।

(30)

दृगन लगत, बेधत हियहिं, बिकल करत अँग आन।
ए तेरे सब तैं विषम ईछन-तीछन बान॥

शब्दार्थ – आन = अन्य, दूसरे। विषम = भयंकर, कठोर। ईछन = ईक्षण, दृष्टि। तीछन = तीक्ष्ण, तेज, चोखे, कँटीले।

(31)

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुख-दंदु।
अधिक अँधेरौ जग करत मिलि मावस रबि-चंदु॥

शब्दार्थ – दुसह = असहनीय, अत्यन्त क्षमतावान। दुराज = दो राजा। दुख-दंदु = दुख-द्वन्द्व, दुःख का झगड़ा अर्थात् दो दुःखों का उत्कर्ष। मावस = अमावस्या।

(32)

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन-हियैं, दई, नई यह रीति॥

शब्दार्थ – दृग = आँख। उरझत = आपस में गूथते हैं अर्थात् मिलते हैं। टूटत कुटुम = कुटुम्ब के सम्बन्ध टूट जाते हैं। जुरत = प्रेम से परस्पर सम्बद्ध हो जाते हैं। गाँठि = आँट, ईर्ष्या। हियैं = हृदय में। दई = विधाता। नई = अनोखी।

(33)

तच्यौ आँच अब बिरह की, रह्यौ प्रेम-रस भीजि।
नैननु कैं मग जलु बहै हियौ पसीजि पसीजि॥

शब्दार्थ – तच्यौ = संतप्त हुआ, संतप्त होकर। रह्यौ प्रेम-रस भीजि = प्रेम रूपी रस में भीग रहा हुआ, अर्थात् पहले से भीगा हुआ। पसीजि-पसीजि = उष्णता के कारण प्रस्वेदित हो-होकर।

(34)

रनित भृंग-घंटावली, झरति दान मधु-नीरु।
मंद मंद आवतु चल्यौ कुंजरु कुंज समीरु॥

शब्दार्थ – रनित = रणित, गूँजते हुए। भृंग = भौंरे। घंटावली = घंटों की कतार, बहुत-से घंटे। दान = यौवन-मदान्ध हाथी की कनपटी फोड़कर चूने वाला रस या मद। मधुनीरु = मकरंद, पुष्प-रस। कुंजरु = हाथी। कुंज-समीरु = कुंज की हवा, कुंजों से होकर बहने वाली वायु जो छाया और पुड्ढ के संसर्ग से ठण्डी और सुगन्धित भी होती है।

(35)

ललन, सलोने अरु रहे अति सनेह सौं पागि।
तनक कचाई देत दु ख सूरन लौं मुँह लागि॥

शब्दार्थ – सलोने = 1. लावण्ययुक्त, 2. लवण-युक्त। सनेह सौं पगि = 1. प्रेम में सराबोर, 2. तेल में तला हुआ। कचाई = 1. बात का हल्कापन 2. कचाई। सूरन = काँद, एक प्रकार की तरकारी, ओल, जिसकी बड़ी-बड़ी गोल-मटोल गाँठें जमीन के अन्दर पैदा होती हैं; वह नमक और घी अथवा तेल में तला हुआ होने पर भी जरा-सा कच्चा रह जाने पर मुँह में सुरसुराहट और खाज-सी पैदा करता है। लौं = समान। मुँह लागि = 1. मुँह से लगकर, जबान पर आकर, 2. मुँह में खुजलाहट पैदा कर।

(36)

लाल, तुम्हारे रूप की, कहौ, रीति यह कौन।
जासौं लागत पलकु दृग लागत पलक पलौ न॥

शब्दार्थ – लाल = प्यारे, नायक, नन्दलाल श्रीकृष्णचन्द्र। जासौं = जिससे। पलकु = एक पल। पलौ = पल भर के लिए भी।

(37)

मानहु बिधि तन-अच्छछबि स्वच्छ राखिबैं काज।
दृग-पग पोंछन कौं करे भूषन पायंदाज॥

शब्दार्थ – अच्छ = अच्छी। राखिबैं = रखने के निमित्त। दृग-पग = आँखों के पाँव। पायंदाज = पावदान, वह टाट जो स्वच्छ बिछौने के पास बिछा दिया जाता है, जिस पर पैर पौंछकर लोग बिछौने पर जाते हैं, जिससे बिछौना मैला न हो।

(38)

अधर धरत हरि कैं, परत ओठ-डीठि-पट-जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी इंद्रधनुष-रंग होति॥

शब्दार्थ – अधर = दोनों ओष्ठों में से निचले भाग को अधर कहते हैं जबकि ऊपरी भाग ओष्ठ कहलाता है। डीठि = दृष्टि। हरित = हरे रंग की।

(39)

मोहिं तुम्हें बाढ़ी बहस, को जीतै, जदु राज।
अपनैं अपनैं बिरद की दुहूँ निबाहन लाज॥

शब्दार्थ – बाढ़ी = बढ़ा ली है। बहस = विवाद। बिरद = विरुद, जिस क्रिया से किसी मनुष्य का नाम विख्यात हो जाता है, उस क्रिया से बना हुआ विशेषण उस मनुष्य का विरुद कहलाता है। जैसे – पतितों को पावन करने में विख्यात होने के कारण ईश्वर 'पतित-पावन' कहलाते हैं। दुहूँ = दोनों।

(40)

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ॥

शब्दार्थ – बतरस = बातचीत करने के आनन्द के लालच से। लुकाइ = छिपाकर। सौंह = शपथ, सौगन्ध। नटि = इनकार।

(41)

कहलाने एकत बसत अहि-मयूर, मृग-बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियो दीरघ-दाघ निदाघ॥

शब्दार्थ – कहलाने = कातर हुए, व्याकुल हुए। एकत = एकत्र। अहि = सर्प। तपोवन सौ = तपस्वियों के वन सा। दीरघ-दाघ = दीर्घ अर्थात् प्रचण्ड ताप वाली। निदाघ = ग्रीष्म ऋतु।

(42)

प्रलय करन बरषन लगे जुरि जलधर इकसाथ।
सुरपति-गरबु हर्‌यो हरषि गिरिधर गिरि धरि हाथ॥

शब्दार्थ – प्रलय-करन = प्रलय करने वाले। जुरि = इकट्ठे होकर। जलधर = मेघ। सुरपति = इन्द्र। गरबु = घमण्ड। हर्‌यो = नष्ट कर दिया। हरषि = हर्षपूर्वक। गिरिधर = श्रीकृष्णचन्द्र। गिरि = पहाड़। धरि = धारण कर।

(43)

पटु पाँखै, भखु काँकरै, सपर परेई संग।
सुखी, परेवा, पुहुमि मैं, एकै तुंहीं, बिहंग॥

शब्दार्थ – पटु = वस्त्र। भखु = भक्ष्य, भोजन। सपर = पक्षयुक्त, सब स्थानों में तेरे साथ जाने की योग्यता रखने वाली के साथ। परेई = 'परेवा' का स्त्रीलिंग 'परेई'। परेवा = पाराव्रत, कबूतर। पुहुमि = पृथ्वी। बिहंग = पक्षी।

(44)

तौ, बलियै, भलिये बनी, नागर नंदकिसोर।
जो तुम नीकैं के लख्यौ मो करनी की ओर॥

शब्दार्थ – बलियै = बलैया। 'भलिये बनी' = तब तो बस मेरी बिगड़ी खूब बनी ! मेरा उद्धार हो चुका ! अर्थात् नहीं हो सकेगा। 'नीकैं के लख्यौ' = भली-भाँति देखा। करनी = भले-बुरे कर्म, करतूत।

(45)

देखत कछु कौतिगु इतै, देखौ नैंक निहारि।
कब की इकटक डटि रही टटिया अँगुरिनु फारि॥

शब्दार्थ – कौतिगु = कौतुक, तमाशा। नैकु = जरा। निहारी = दृष्टि देकर, गौर करके। डटि रही = डटी हुई है, एक ही स्थान पर स्थित है। टटिया = टट्टर, टट्टी, टाटी, बाँस की खपच्चियों से बनायी हुई ओट। अँगुरिनु फारि = उँगलियों से फाड़कर।

(46)

इन दु खिया अँखियानु कौं सुखु सिरज्यौई नाहिं।
देखैं बनैं न देखतै, अनदेखैं अकुलाँहि॥

शब्दार्थ – सिरज्यौई नाहिं = बनाया ही नहीं गया है, सृष्टि ही नहीं हुई है। देखैं = दृष्टिगोचर होने पर। बनैं न देखतै = देखते ही नहीं बनता। अनदेखैं = दृष्टिगोचर न होने पर। अकुलाँहि = व्याकुल होती हैं।

(47)

कोटि जतन कोऊ करौ, तन की तपनि न जाइ।
जौ लौं भीजे चीर लौं रहै न प्यौ लपटाइ॥

शब्दार्थ – जौ लौं = जब तक। भीजे चीर लौं = भीगे हुए वस्त्र की भाँति। प्यौ = प्रियतम। लपटाइ = लिपट नहीं रहेगा।

(48)

चिरजीवौ जोरी, जुरे क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि, ए बृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

शब्दार्थ – चिरजीवौ = चिरंजीवी हो। जोरी = जोड़ी। जुरै = जुड़े। सनेह = स्नेह। गँभीर = गम्भीर, अगाध। घटि = न्यून, कम, छोटा। बृषभानुजा = 1. वृषभानुजी जैसे महापुरुष की बेटी, 2. वृषभ अर्थात् बैल की अनुजा यानी गाय। हलधर के बीर = 1. बलदेवजी जैसे प्रभावशाली पुरुष के भाई, 2. हल को धारण करने वाले अर्थात् बैल के बीर यानी भाई।

(49)

भौंहनु त्रासति, मुँह नटति, आँखिनु सौं लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति करु, इँची आगैं आवति जाति॥

शब्दार्थ – त्रासति = (बनावटी रोष से भरकर) डराती है। नटति = नहीं-नहीं करती है, इनकार करती है। ऐंचि = खींचकर। इँची = खिंचती। आगे आवति जाति = आगे आती जाती है (नायक की ओर खिसकती आती है)।

(50)

सोहत ओढैं पीत पटु स्याम, सलौनें गात।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतपु पर्‌यौ प्रभात॥

शब्दार्थ – सोहत = शोभित होता है। ओढैं = ओढ़ने से। पीतपटु = पीला वस्त्र, पीताम्बर। सलौनें = सुन्दर, चमकीले। गात = शरीर, देह। नीलमनि-सैल पर = नीलमणि के पर्वत पर। आतपु = घाम, धूप। प्रभात = प्रातःकाल।

❖❖❖

सुन्दरदास

सुन्दरविलास

उपदेश चितावनी कौ अंग

मनहरण छन्द

(1)

कान के गये तें, कहाँ कान ऐसौ होत मूढ़,
नैन के गये तें, कहाँ नैन ऐसे पाइहै।
नासिका गये ते, कहाँ नासिका सुगंध लेत,
मुख के गये ते, कहाँ मुख ऐसै गाइहै।
हाथ के गये ते, कहाँ हाथ ऐसै काम होत,
पाँव के गये ते, ऐसे पाँव कहा धाइहै।
याही तें विचार देखि, 'सुंदर' कहत तोहि,
देह के गये ते, ऐसी देह नहीं आइहै॥

अर्थ – कान के नष्ट हो जाने पर ऐसे कान फिर कहाँ मिलते हैं ? नेत्रों के चले जाने पर फिर ऐसे नेत्र कहाँ मिलते हैं ? नाक के नष्ट हो जाने पर फिर नाक सुगन्ध कहाँ लेती है ? मुख के नष्ट हो जाने पर मुख फिर ऐसा कहाँ पाता है ? हाथ टूट जाने पर फिर हाथ जैसा काम अभी करता है वैसा काम कहाँ होता है ? पाँव के नष्ट हो जाने पर फिर ऐसे कहाँ दौड़ा जाता है ? शरीर के नष्ट हो जाने पर फिर ऐसी देह नहीं आएगी अर्थात् फिर मानव शरीर नहीं मिलेगा। इसीलिए कहता हूँ कि तू भली प्रकार विचार कर देख-सोच। यह मानव शरीर भगवान के भजन के लिए मिला है, इसका उपयोग कर ले, नहीं तो फिर न जाने किस योनि में भटकेगा।

(2)

बार बार कह्यो तोहि, सावधान क्यों न होहि,
ममता की पोट सिर काहे कौं धरतु है।
मेरो धन, मेरो धाम, मेरो सुत, मेरी बाम,
मेरे पसु, मेरो ग्राम, भूलौ यौं फिरतु हो॥
तूँ तौ भयौ बावरो, बिकाय गई बुद्धि तेरी,
ऐसो अंधकूप गृह, तामैं तू परतु है।
'सुंदर' कहत तोहि नैक हूँ न आवे लाज,
काज कौ बिगारि के अकाज क्यों करतु है॥

शब्दार्थ – पोट = पोटरी, गठरी। ममता = मोह। अकाज = हर्जा, हानि।

अर्थ – मैंने तुझे बार-बार समझाया, तू सावधान क्यों नहीं हो जाता। मोह की गठरी अपने सिर पर क्यों लादे हुए है ? यह मेरा धन है, यह मेरा घर है, यह मेरा बेटा है, यह मेरी प्रिया है, ये मेरे पशु (गाय, बैल, भैंस, घोड़े, हाथी आदि) हैं, यह मेरा गाँव है (मैं इस गाँव का मालिक हूँ) – इन्हीं ममत्व की बातों में भूला फिरता है। तू तो पगला हो गया है। तेरी बुद्धि बिक गई है, नष्ट हो गई है, भ्रमित हो गई है। (तेरी नहीं रह गई है, विषयों ने उसे खरीद लिया है) यह घर और इसका मोह अन्धे कुएँ (जलहीन कुएँ) के सदृश है, इसमें तू पड़ा हुआ है। तुझे जरा भी लज्जा नहीं आती ? हे मूर्ख ! अपना काम बिगाड़ कर तू नुकसान क्यों उठाता है।

(3)

बैरी घर माँहि तेरे, जानत सनेही मेरे,
दारा सुत वित्त तेरो खोसि खोसि खाहिंगे।
औरऊ कुटुंब लोग लूटैं चहुँ ओरही तें,
मीठी मीठी बात कहि तोमौं लपटाहिंगे॥
संकट परेगौ जब, कोऊ नहिं तेरौ तब,
अतिहि कठिन बाँकी बेर उठि जाहिंगे।
'सुंदर' कहत तातैं झूठौ ही प्रपंच यह,
सपनै की नाहिं सब देखत बिलाहिंगे॥

शब्दार्थ – खोसि-खोसि = लूट खसोटकर। प्रपंच = बखेड़ा। नाहिं = नाईं, तरह।

अर्थ – तेरे घर में ही तेरे शत्रु हैं, जिन्हें तू अपना स्नेही मित्र, बंधु-बांधव समझ रहा है। गलत-सही उद्यम कर जिस धन को संचित करने में तू अपना बहुमूल्य मानव जीवन लुटा रहा है उस धन को ये तेरे स्त्री, पुत्र, परिजन आदि सभी नोच-खसोट कर खा जायेंगे। कुटुंब के जो अन्य लोग हैं वे भी तुझे चारों ओर से लूटते हैं और मीठी-मीठी, चिकनी-चुपड़ी बातें कह कर आकर तुझसे लिपट जाते हैं। किन्तु जब संकट पड़ेगा, तब कोई भी तेरा नहीं होगा। अत्यन्त बिकराल इस वक्र वेला में वे सभी साथ छोड़कर उठकर अन्यत्र चल देंगे। अत: जान-समझ ले ! यह सब प्रपंच झूठा है, व्यर्थ है। मायाजनित यह सुन्दर भासित होने वाला संसार स्वप्न के समान ही देखते-देखते नष्ट हो जाएगा। मानव देह केवल आत्म-कल्याण के लिए मिली है, लोभ, मोह आदि विकारों में इसे व्यर्थ न कर।

(4)

बारू कै मंदिर माँहिं बैठि रह्यो थिर होइ,
राखत है जीवन की आसा कैउ दिन की।
पल-पल छीजत, घटत जात घरी घरी,
बिनसत बार कहा, खबरि न छिन की॥

करत उपाइ झूँठे लेन देनखाँन पाँन,
मूसा इत उत फिरै, ताकि रही मिनकी।
'सुंदर' कहत मेरी मेरी करि भूल्यौ सठ,
चंचल चपल माया भई किन किन की॥

शब्दार्थ – छीजना = कम होते जाना। मूसा = मूषक, चूहा। बार = विलम्ब। मिनकी = बिल्ली।

अर्थ – तू बालू के महल (शरीर) में स्थिर-चित्त होकर बैठा हुआ है और अनन्तकाल तक जीवित रहने की अभिलाषा रखता है। यह शरीर तो प्रतिक्षण रगड़-झगड़ से कम होता जाता है, प्रत्येक घड़ी घटता ही जाता है। इसके विनष्ट होने में विलम्ब कहाँ ! एक भी क्षण बाद होने वाली घटना को हम नहीं जानते किन्तु लेन-देन, खाना-पीना आदि सभी झूठे उपाय इस बालू के महल के बचाव के लिए करते हैं। बेचारा चूहा (जीवांश) इधर-उधर बचाव के लिए फिरता है, पर बिल्ली (मृत्यु) तो ताक लगाए बैठी है। हे मूर्ख ! यह मेरी है, यह मेरी है, कहता हुआ तू भूल में पड़ा हुआ है। यह चंचल माया आज तक संसार में किन-किन की हुई है, जो तेरी होगी।

(5)

पायौ है मनुस देह, ओसर बण्यो है आइ,
ऐसौ देह बार-बार कहौ कहाँ पाइये।
भूलत है बावरे तूँ अब के सयानौ होइ,
रतन अमोल यह काहे कौं ठगाइये॥
सुमुझि विचार करि, ठगनि को संग त्यागि,
ठगबाजी देख कहुँ मन न डुलाइये।
'सुन्दर' कहत तोहि अब सावधान होइ,
हरि को भजन करि हरि मैं समाइये॥

अर्थ – तूने मनुष्य देह पाई है। यह अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ है। मनुष्य शरीर फिर बार-बार कहाँ मिलेगा ? पगले ! चतुर होकर भी तू भूल कर रहा है। इस अनमोल रत्न (जीवात्मा) को क्यों ठगा रहा है ? समझ-विचार कर ठगों का संग त्याग दे। यह धोखाधड़ी देखकर चित्त को चंचल न कर। सावधान हो जा। हरि का भजन करके हरि में समा जा अर्थात् सायुक्त मुक्ति प्राप्त कर ले।

(6)

घरी-घरी घटत, छीजत जात छिन छिन,
भीजत ही गरि जात, माटी कौ सौ ढेल है।
मुक्तिहूँ कै द्वारै आइ, सावधान क्यों न होहि,
बार बार चढ़त न त्रिया कौ सौ तेल है॥

करि लै सुकृत हरि भजन अखंड कर,
याही मैं अन्तर परै यामैं ब्रह्म मेल है।
मानुस जनम यह जीति भावै हार अब
'सुन्दर' कहत यामें जूवा कौ सौ खेल है॥

शब्दार्थ – डेल = ढेला, चका, मिट्टी का टुकडा। तेल चढ़ना = विवाह के पूर्व का एक मांगलिक कृत्य जो 'मटिमँगरा' भी कहलाता है। यह विवाह का सूचक है।

अर्थ – यह शरीर घड़ी-घड़ी घटता जाता है। क्षण-क्षण छीजता जाता है। मिट्टी का ढेला जो भींगते ही गलकर नष्ट हो जाता है, इस मानव-देह का भी उतना ही अस्तित्व है। इसे शाश्वत और नित्य मत मान। चौरासी लाख योनियों में से केवल यही एक मनुष्य-योनि ही मुक्ति का द्वार है। तू इस मुक्ति द्वार पर आकर भी सावधान क्यों नहीं होता। जिस प्रकार स्त्री का तेल एक ही बार उठता है, बार-बार नहीं उठता अर्थात् विवाह एक ही बार होता है, उसी प्रकार मनुष्य जीवन बार-बार नहीं मिलता। नेक-नीयत से भले कार्य करते हुए अहर्निश उस निराकार अखण्ड परब्रह्म का नाम-स्मरण कर और उसी घटव्यापी परब्रह्म में मन रमा। इसी मार्ग पर चलकर उस ब्रह्म से इस आत्मा का मेल होगा। बड़ी साधना से यह मनुष्य-जीवन मिला है। जिस तरह द्यूत-क्रीड़ा में चतुर व्यक्ति जीत हासिल कर लेता है जबकि मूर्ख अपना सब-कुछ गँवा बैठता है उसी प्रकार यह मानव-जीवन है। तू चाहे तो विवेकवान होकर नाम-स्मरण और पुण्यकर्म कर चौरासी के फेर को जीत ले, आवागमन के चक्र से मुक्ति प्राप्त कर ले और चाहे तो मूढ़ बनकर व्यर्थ के विकारों में इसे खो दे। फिर बार-बार जन्म लेता रह और बार-बार मरता रह।

(7)

जोबन कौ गयौ राज, और सब भयौ साज,
आपुनी दुहाई फेरि दमामौ बजायौ है।
लकुटी हथ्यार लिये, नैनहिं को ढाल दिये,
सेत बार भये ताको तंबू सौ तनायौ है॥
दसन गये सु मानौ दरबान दूरि किये
जौंगरी परी सु औरै बिछौना बिछायो है।
सीस कर कंपत सु 'सुंदर' निकार्‌यो रिपु,
देखत ही देखत बुढ़ापौ दौरि आयो है॥

शब्दार्थ – जौगरी = चमड़े पर पड़ने वाली झुर्री, सिकुड़न।

अर्थ – देखते-देखते बुढ़ापे का शासन-काल आ गया। जवानी का राज चला गया। सारी बातें, तेरे सारे रंग-ढंग बदल गए और के और ही हो गए। वृद्धावस्था ने नगाड़ा बजाकर अपनी दुहाई फेर दी। वृद्धावस्था में लाठी के सहारे से चलना पद रहा है, मानो यह लाठी इस वृद्धावस्था का हथियार है। नेत्रों से कम सूझने

लगा, मानो यह अन्धापन ही यौवन के रूप रूपी शत्रु से बचने के लिए ढाल है। बाल सफेद हो गए, मानो वृद्धावस्था ने विजय के तंबू तान दिये हैं। दाँत गिर गए, मानो दरबान हटा दिए गए। चमड़े में झुर्री पड़ गई है, मानो वह चिरकालीन विश्राम (मृत्यु) के लिए बिस्तर लगा दिया गया है। सिर और हाथ काँपने लगे हैं, मानो काम-क्रोधादि शत्रुओं ने जवानी को देह रूपी देश से निकाल दिया है और इसीलिए वह उनसे डरकर थर-थर काँप रही है।

सवैया छन्द

(8)

पाई अमोलिक देह इहै नर, क्यों न बिचार करै दिल अंदर।
कामहु कोधहु लोभहु मोहहु, लूटत हैं दसहूँ दिसि द्वंदर॥
तूँ अब बछत है सुर लोकहि, कालहु पाइ परै सु पुरंदर।
छाड़ि कुबुद्धि, सुबुद्धि हृदै धरि, आतम राम भजै किन 'सुंदर' ॥

शब्दार्थ – द्वंदर = झगड़ालू। परै = गिर पड़ता है। पुरन्दर = इन्द्र। किन = क्यों।

अर्थ – तुझे यह अनमोल शरीर मिला है, तू इसकी बहुमूल्यता का मन में विचार क्यों नहीं करता। झगड़ालू काम, क्रोध, लोभ, मोह तुझे दसों दिशाओं से लूटते रहते हैं। तू सुरलोक (स्वर्गप्राप्ति) की वांछा करता है? अरे अज्ञानी ! समय बीतने पर तो सुरलोक के स्वामी इन्द्र को भी अपना पद त्यागना पड़ता है। इसलिए हे अबोध प्राणी ! कुबुद्धि छोड़, हृदय में सुबुद्धि धारण कर; घट में ही विद्यमान उस ब्रह्म राम को क्यों नहीं भजता? अर्थात् सभी विषय-विकारों से मुक्त होकर एकमात्र उस हृदयस्थ परमात्मा का सुमिरण कर।

इंदव छन्द

(9)

इंद्रिनि के सुख मांनत है सठ, या हित तें बहुते दुःख पावै।
ज्यौं जल मैं झख मांसहिं लीलत, स्वाद बंध्यौ जल बाहरि आवै॥
ज्यौं कपि मूठि न छाड़त है, रसना बसि बंदि पर्‌यौ बिळलावै।
'सुन्दर' क्यौं पहिलै न संभारत, जौ गुर खाइ सु कान बिंधावै॥

अर्थ – रे शठ ! तू इन्द्रियों के सुख को ही सुख मानता है इसीलिए अत्यधिक दुःख पाता है। जैसे जल में रहते समय मछली मांस का चारा निगलती है, और स्वाद से बँधी हुई जल के बाहर आ जाती है तब मछुवे द्वारा पकड़ ली जाती है; जैसे बन्दर संकीर्ण मुख वाले घड़े में रखे अन्न को लेने के लिए लालचवश अपने दोनों हाथ साथ ही डालता है और दोनों मुट्ठियों में दानाभर कर साथ ही निकालना चाहता है, पर न तो मुट्ठियाँ साथ निकलती हैं, न वह लालची मुट्ठी के अन्न को छोड़ता ही है। फलतः जिह्वा के स्वाद के कारण

फँसानेवाले के हाथ में बंदी बन जाता है और फिर जीवन भर दर-दर मारा फिरता है। इसी प्रकार मनुष्य भी कामनाओं-वासनाओं, विषय-विकारों की तृष्णा में इस मायाजनित जगत् के धोखे में फँसता चला जाता है फिर जीवन पर्यन्त उसी में उलझकर रह जाता है। अरे ! तू पहले से ही क्यों नहीं सँभल जाता। क्या तुझे पता नहीं है कि बच्चे के कान छिदाने से पूर्व उसे गुड़ के रसास्वादन में उलझा दिया जाता है। (बच्चे को कर्ण-छेद के समय मिठाई दे दी जाती है, वह उसी में बहल जाता है, तब तक उसका कान छेद दिया जाता है। यदि वह मिठाई का लोभ न करे, तो कान छिदने की पीड़ा उसे न सहनी पड़े।)

(10)

कौन कुबुद्धि भई घट अंतर, तूँ अपनौ प्रभु सौं मन चोरै।
भूलि गयौ विषया-सुख मैं सठ, लालच लागि रह्यौ अति थोरै॥
ज्यौं कोउ कंचन छार मिलावत, लै करि पाथर सौं नग फोरै।
'सुंदर' या नर देह अमोलिक, तीर लगी नवका कत बोरै॥

अर्थ – तेरे मन में कौन सी दुर्बुद्धि उत्पन्न हो गई है, जो तू प्रभु-भक्ति से अपना जी चुराता है। रे शठ ! विषय-सुख में रत तू उस परम दयालु ईश्वर को भूल गया है; थोड़े से विषय-सुख के लालच में तू मग्न हो गया है। यह तो ऐसा ही है जैसे कोई स्वर्ण को धूल में मिला दे, नष्ट कर दे अथवा हाथ में पत्थर लेकर बहुमूल्य नग को फोड़ दे। यह मनुष्य-जन्म अनमोल है जो चौरासी लाख योनियों के कष्ट भुगतने के पश्चात् प्राप्त हुआ है। किनारे लगी नौका को फिर से क्यों डुबो देना चाहता है ? आवागमन की नदी के उस पार सायुज्य मुक्ति का किनारा है। हरि-भजन, नाम-स्मरण एवं सुकृत्यों द्वारा इस मनुष्य शरीर से वह मोक्षतट प्राप्त किया जा सकता है। चौरासी लाख योनियों में भी केवल मनुष्य-जीवन में ही हरि-भजन, नाम-स्मरण एवं सुकृत्य करना संभव है। अब भी यदि प्रभु-भक्ति नहीं की तो मोक्ष कब और कैसे मिलेगा। ऐसी स्थिति में यह ऐसा ही होगा जैसे किनारे लगी हुई नौका को मूर्ख मल्लाह ने स्वयं डुबो दिया हो।

मनहरण छन्द

(11)

करत प्रपंच इनि पंचनि कै बसि पर्‌यो,
पर दारा रत, भै न आनत बुराई कौ।
पर धन हरै, पर जीव की करत घात,
मद्य मांस खाइ, लवलेस न भलाई कौ॥
होइगौ हिसाब तब मुख तें न आवै ज्वाब,
'सुन्दर' कहत लेखा लेत राई राई को।
इहाँ तौं किये बिलास, जम की न तोहि त्रास,
उहाँ तो न ह्वै है कछु राज पोपाँबाई कौ॥

शब्दार्थ – पंचनि = पंच ज्ञानेन्द्रियाँ। लवलेश = संसर्ग, बहुत थोड़ा अंश। पोपाँबाई – यह कुम्हार की लड़की थी जो खंडेले के राजा के यहाँ प्रधान हो गई थी। उसने ऐसा राज्य जमाया कि आप ही फाँसी लटकी थी। राज पोपाँबाई कौ = 'टके सेर भाजी टके सेर खाजा' वाला राज्य।

अर्थ – इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के वशीभूत होकर तू अनेक प्रकार के प्रपंच करता है। दूसरे की स्त्री में आसक्त रहता है – बुराई का भय मन में नहीं लाता। (दूसरे की स्त्री में आसक्त रहना बुरी बात है पर तू इस बुरे कर्म को करने से भी नहीं डरता।) धोखा देकर दूसरे का धन हरता है, अपनी जिह्वा के क्षणिक सुख के लिए निरीह, निर्दोष और मूक प्राणियों की हत्या कर देता है। मदिरा-मांस का भक्षण करता है। सुकृत्य करने का तो लेशमात्र भी तुझे विचार नहीं आता। तू क्या ऐसा समझ बैठा है कि तेरे कर्म छिपे रह जाएँगे। मृत्यु के पश्चात् जब तेरे सुकृत्य और अपकर्मों का हिसाब किया जाएगा, तब तुझे जवाब देते नहीं बनेगा। इस लोक में तो यम प्रत्यक्ष नहीं है इसलिए यहाँ तू उसका भय भुलाकर केवल भोग-विलास में रत रहा लेकिन वहाँ यमलोक में पोंपाबाई का राज नहीं है। वहाँ तेरे प्रत्येक कर्म का प्रतिफल निर्धारित किया जाएगा।

(12)

दुनिया कौं दौड़ता है औरति कौं लौड़ता है,
औजूद कौं मौड़ता है, बटोही सराइ का॥
मुरगी कौं मोसता है, बकरी कौं रोसता है,
गरीबौं कौं खोसता है, बेमिहर गाइ का॥
जुलम कौं करता है, धनी सौं न डरता है,
दोजग कौं भरता है, खजाना बलाइ का।
होइगा हिसाब तब आवेगा न ज्वाब कछु
'सुन्दर' कहत गुन्हैंगार है खुदाइ का॥

शब्दार्थ – लौड़ता है = लाड़-प्यार करता है। औजूद = वजूद, शरीर। मौड़ता है = ऐंठता है। मोसता है = गर्दन मरोड़कर मार डालता है। रोसता है = रोष करके मारता है। खोसता है = परेशान करता है। बेमिहर = निर्दय। धनी = मालिक, ईश्वर, सामर्थ्यवान प्रभु। दोजग = दोजख, नर्क। बलाइ = बला, आफत, विपत्ति। गुन्हैंगार = अपराधी। खुदाइ = खुदा, ईश्वर।

अर्थ – तू दुनिया की ओर (घर-धन्धों में) बेतहाशा दौड़ता है, स्त्रियों में आसक्त रहता है। अपने अस्तित्व के घमंड से शरीर को ऐंठता है। क्या तू नहीं जानता कि यह देह तो एक सराय है जहाँ आत्मा रूपी राहगीर थोड़े समय के लिए ठहरा है। रैन ढले चल जाना है। फिर इस नश्वर शरीर का घमंड क्यों ? रे अधम ! अपने जिह्वा-सुख के लिए तू निरीह मुर्गी को गर्दन मरोड़कर मार डालता है, बकरी को काटता है, निर्धनों का शोषण करता है। गाय के साथ निर्दयता करता है। निर्दोष और मूक प्राणियों पर क्रूरता करते समय तू प्रभु से भी जरा भी नहीं डरता। ये सारे कुकृत्य करके तू अपने पापों का घड़ा भर रहा है, अपकर्म कर-करके

तूने आफत का खजाना जमा कर लिया है। मृत्यु के पश्चात् जब तेरे पापों का हिसाब किया जाएगा, तब तुझे जवाब देते नहीं बनेगा। जिस दयालु ईश्वर ने अत्यन्त कृपा कर तुझे यह मानव शरीर प्रदान किया उसी ईश्वर की सृष्टि नष्ट कर तू उसका अपराधी हो गया है।

(13)

कर कर आयौ जब, खर खर काट्यौ नार,
भर भर बाज्यौ ढोळ, घर घर जान्यौ है।
दर दर दोर्‌यौ जाइ, नर नर आगै दीन
बर बर बकत न नेक अलसान्यौ है॥
सर सर साधै धन, तर तर तोरै पात,
जर जर काटत अधिक मोद मान्यौ है।
फर फर फूल्यौ फिरै, डर डरपै न मूढ़,
हर हर हँसत न 'सुन्दर' सकान्यौ है॥

अर्थ – पूर्व जन्म के कर्म कर-कर के जब तू आया, मानव रूप में जन्मा; तब भोंड़े औजार से चमाइन ने तेरा नार खर-खर करके काटा; तदनन्तर भड़-भड़ ध्वनि करते हुए खुशी के ढोल बजे और तेरे उत्पन्न होने की बात घर-घर ने जान ली। जब तू कुछ बड़ा हुआ, तभी दर-दर (द्वार-द्वार) दौड़ने लगा और नर-नर के सामने अपनी दीनता प्रकट करने लगा। बराबर बर-बर बकने में (बड़बड़ाने में), व्यर्थ बकवाद करने में तू जरा भी नहीं अलसाता। धन साधने में तू सर-सर (शीघ्रता से) लग गया (नोच-खसोट कर बहुत जल्द धन एकत्रित करने में लग गया)। तर-तर (विभिन्न वृक्षों) से पत्ते तोड़ता है और दूसरों को (वृक्षों को तथा आदमियों को भी) जड़-जड़ काटने में (समूल नष्ट करने में) तुझे परम प्रसन्नता होती है। अपकर्म करके भी तू फर-फर फूला फिरता है (मदमाता फिरता है); हे मूढ़ ! क्या तू तनिक भी डरता नहीं। हे निर्लज्ज ! हर-हर करके (अट्टहास कर) हँसने में तुझे जरा भी शंका नहींहोती ?

(14)

जनम सिरानौ जाइ भजन विमुख रूठ,
काहे कौं भवन-कूप बिन-मीच मरिहै।
गहित अविद्या जानि सुक नलिनी ज्यौं मूढ़,
करम बिकरम करत नहिं डरिहै॥
आपु ही तैं जात अंध नरकनि बार बार,
अजहुँ न संक मन माँहिं अर करिहै।
दु:ख कौ समूह अवलोकि कैं न त्रास होइ,
'सुन्दर' कहत नर नागपासि परिहै॥

शब्दार्थ – सिराना = बीतना। करम = करने योग्य कर्म। बिकरम = विकर्म, बुरे काम, अकरणीय कर्म। नागपास = एक प्रकार का तांत्रिक फंदा जो प्रबल से प्रबल शत्रु को भीबाँध लेता है।

अर्थ – रे शठ ! भगवान के भजन के बिना तेरा मनुष्य जन्म व्यर्थ बीता जा रहा है। मिथ्या सांसारिक सुखों में आसक्त हो तू प्रभु-भजन से विमुख हुआ है। इन सांसारिक भोग-विलासों से रूठ और नाम-स्मरण में मन रामा। बिना मौत के ही घर रूपी कुएँ में क्यों मरा जा रहा है। रे मूढ़ ! जिस प्रकार सुग्गा लासा लगी बाँस की नली पर अज्ञान-वश बैठकर पकड़ा जाता है, उसी प्रकार तू भी अविद्या के द्वारा माया रूपी ठगिनी के जाल में पकड़ा गया है। इसी से तू उचित और अनुचित कर्म का भेद नहीं जान कर अकरणीय कर्म करने में जरा भी नहीं डरता। रे ज्ञानचक्षुहीन मनुष्य ! अपने ही कर्मों के प्रतिफलस्वरूप तू अपने लिए बार-बार नर्क जाने का मार्ग तय कर लेता है। और कितने आश्चर्य की बात है कि इतने पर भी तुझे आत्म-ग्लानि नहीं होती। जन्म-मरण का कष्ट, जीवन-संघर्ष के दु:ख-समूह अनुभव करके भी तुझे जरा भी भय नहीं होता ? सुन्दरदास कहते हैं कि ऐसा विवेकहीन मनुष्य निश्चय ही नागपाश में पड़ेगा अर्थात् आवागमन के फेर में पड़ा रहेगा। यानी बार-बार विभिन्न योनियों में जन्म लेगा और बार-बार मरेगा इस प्रकार बार-बार जन्म-मृत्यु के समय होने वाले कष्ट को सहेगा। विभिन्न योनियों में बार-बार जन्म से पूर्व विभिन्न माताओं के गर्भ (वह अँधेरी-कोठरी जहाँ प्राण तो हैं किन्तु श्वास, अन्न और जल के लिए विवशता है) में उलटा लटका रहेगा और विभिन्न योनियों में बार-बार जन्म के उपरान्त जीवन-संघर्ष के दु:ख-समूह अनुभव करता रहेगा।

डुमिला (दुर्मिल) छन्द

(15)

गुरु ज्ञान गहै अति होइ सुखी, मन मोह तजै सब काज सरै।
धुर ध्यान रहै, पति खोइ, मुखी, रन लोह बजै, तब लाज परै॥
सुरतान उहै, हति दोइ रुखी, तब छोह सजै, अब आज मरै।
पुर थान लहै, मति धोइ, दु खी जन, वोह रजै जब, राज करै॥

शब्दार्थ – काज सरना = काम निकलना, काम पूरा होना। धुर = ध्रुव, अटल। मुखी = उन्मुख। लोह बजना = तलवार चलना। सुलतान = राजा। छोह = स्नेह।

अर्थ – जो गुरु के द्वारा दिए गए ज्ञान को ग्रहण कर उसके अनुसार आचरण करता है, वह अत्यन्त सुखी हो जाता है। अपने मन से सांसारिक मोह को तज देने पर ही मनुज-देह धारण करने के समस्त लक्ष्य सिद्ध हो जाते हैं, (जन्म-मरण के चक्र से आत्मा मुक्त हो जाती है।) ईश्वर में ध्रुव (अटल) ध्यान लगाकर, सांसारिक पति (प्रतिष्ठा) को खोकर, प्रभु की ओर मन को सदैव उन्मुख रखकर तथा काम क्रोधादि से सतत युद्ध करने पर ही तू अपने उस प्रण की लाज में रख सकेगा जो तूने गर्भवास के दौरान परमेश्वर से बारम्बार किया था।

स्मरण रख कि सच्चा सुलतान वही है, जो दो-रुखे पन (दोगलेपन) को मार डालता है यानी मन की कभी संसार की ओर तो कभी प्रभु की ओर उन्मुख होने वाली वृत्ति को नष्ट कर प्रभु-प्राप्ति के एक निर्णय पर अडिग रहता है। ऐसे मनुष्य की देह प्रभु के प्रति स्नेह से सजती है; फिर चाहे जब, चाहे आज और चाहे अभी तत्क्षण ही वह देह-त्याग के लिए तत्पर रहता है। (मृत्यु होने पर अन्तिम संस्कार से पूर्व देह को नहलाकर सुसज्जित किया जाता है)। हे दुखी प्राणी ! अपनी मति को निर्मल कर उसे सुमति बना और सुकृत्य कर तथा प्रभु-प्रेम में लौ लगा। जब वे मुक्तिदाता प्रभु तेरी भक्ति और शुचिता से प्रसन्न हो जाएँगे तब तुझे उस पुण्यलोक में परमपद की प्राप्त होगी अर्थात्त परमतत्त्व में विश्रांति होगी।

❖❖❖

भूषण

कवित्त

(1)

इंद्र जिम जंभ पर बाड़व ज्यौ अंभ पर
रावन सदंभ पर रघुकुलराज हैं।
पौन बारिबाह पर संभु रतिनाह पर
ज्यौं सहस्त्रबाहु पर राम द्विजराज हैं।
दावा द्रुमदंड पर चीता मृगझुंड पर
भूषन बितुंडपर जैसें मृगराज हैं।
तेज तम-अंस पर कान्ह जिम कंस पर
यौं मलेच्छ-बंस पर सेर सिवराज हैं॥

शब्दार्थ – जंभ = महिषासुर का पिता (इसको इंद्र ने मारा था)। अंभ = जल। सदंभ = दंभी। रघुकुल = श्रीरामचन्द्र। बारिवाह = (बारि = जल + बाह = वहन करनेवाला, ढोनेवाला) बादल। रतिनाह = (रतिनाथ) कामदेव। राम = परशुराम। दावा = दावाग्नि। द्रुमदंड= पेड़ की शाखा। वितुंड = हाथी। मृगराज = सिंह। तेज = प्रकाश। तम = अंधकार का भाग। मलेच्छ = मुसलमान। यह अभिन्नधर्मा मालोपमा है।

(2)

दच्छिन कों दाबि करि बैठो आन सायस्त खाँ,
पूनामाहिं दूना गहि जार क्वार को।
हिंदु आन्खंभ गढ़पति दलथंभ भनै
भूषन भिरैया कियौ सुजस अपार को।
मनसबदार चौकीदारन गँजाय,
महलन में मचाय महाभारत सो भार को।
तो सौ को सिवाजी जिहि दो सौ आदमी सों
जीत्यौ जंग सरदार सौ हजार को॥

शब्दार्थ – जोर = बल। करवार = करवाल, तलवार। हिंदुआन = हिन्दुओं के स्तम्भ। गढ़पति = किलों के स्वामी। दलथंभ = सेना के अवलम्ब (ये शिवाजी के विशेषण हैं)। मनसबदार = पदाधिकारी। गँजाय = गंजन करके, मारकर। मचाय = महाभारत के समान युद्ध ठानकर। तो = तेरे समान कौन है। जंग = युद्ध। असवार = अश्वारोही, घुड़सवार।

(3)

उचित सिवाजी तेरी धाक जो सिपाहन के
राजा पातसाहन के मन तें अहं गली।
भ्वै सिला अभंग तूँ जूरत जहाँ जंग तहाँ
तैंरियै फतह होत मानौ सदा संग ली।
साहि के सुपूत पुहवी केपुरहूत कबि
भूषन भनत तेरो खड़गऊ दंगली।
सत्रुन की सुकुमारी सुंदरी थरहरानी
सत्रुके अगार तहाँ राखे जंतु जंगली॥

शब्दार्थ – अहं = अहंकार गल गया, अभिमान दूर हो गया। अभंग = जो भंग न हो, जिसका कोई कुछ बिगाड़ न सके। जंग = युद्ध। फतह = जीत। संग ली = (जीत को) साथ में रखा है। पुहवी = पृथ्वी। पुरहूत = इंद्र। खड़गऊ = तलवार भी। दंगली = दंगल में लड़नेवाली (प्रबल)। सुकुमारी = कोमल अंगवाली। सुंदरी = स्त्रियाँ। थरहरानी = काँप उठीं। अगार = महल।

(4)

गौर गरबीले अरबीले राठवर गह्यौ
लोहगढ़ सिंहगढ़ हिम्मत हरष तें।
कोट के किंगूरनि में गुलंदाज तीरंदाज
राखे वै लगाय गोली-तीरन बरषतें।
है कै सावधान किरवान कसि कम्मरनि
सुभट अमान चहुँ ओरन करषतें।
भूषन भनत तहाँ सरजा सिवातैं चढ़ि
राति के सहारे वै अराति-अमरष तें॥

शब्दार्थ – गौर = गौड़ राजपूत। गरबीले = अभिमानी। अरबीले = अड़नेवाले। राठवर = राठौर। किंगूरा = चोटी। गुलंदाज = गोला चलाने वाले। तीरंदाज = बाण चलाने वाले। बरषतें = बरसते हुए। अमान = अप्रमाण, बहुत। करषतें = बटोरते हुए। राति = रात (के अंधकार) का सहारा पाकर। अराति = शत्रु। अमरष = अमर्ष, क्रोध।

(5)

मेरु सम छोटो पनु सागर सो छोटो मनु
धनद को धनु ऐसो छोट जग जाहि को।
सूरज सो सीरो तेज चाँदनी सी कारी कीर्ति
अंमृत सो कटु दरसन लागै ताहि को।

कुलिस सो कोमल कृपान अरि भानिबे कौं
भूषन भनत भारी भूप भ्वैहसिंलाहिको।
भुव सो चरन चल सदा रनमंडल में
धुव सो चपल धुव-बल सिवसाहि को॥

शब्दार्थ – पनु = प्रण, प्रतिज्ञा। धनद = कुबेर। सीरो = ठंढा। कटु = कड़वा। कुलिंस = वज्र। भानिबे = मारने के लिए। धुव = ध्रुव तारा। चपल = चंचल। धुक्बल = स्थिर पराक्रम (भारी बल)।

सवैया

(6)

मच्छहु कच्छ में कोल नृसिंह में बावन में भनि भूषन जो है।
जो द्विजराम में जो रघुराम में जो'ब कह्यौ बलरामहु को है।
बौद्ध में जो अरु जो कलकी महँ बिक्रम हूबे को आगे सूनो हैं।
साहस भूमिअधार सोई अब श्रीसरजा सिवराज में सोहै॥

शब्दार्थ – मच्छ = मत्यावतार। कच्छ = कच्छपावतार। काल = वराहावतार। द्विजराम = परशुराम। रघुराम = रामचंद्र। जो'ब = जो अब। कलकी = कल्की अवतार। विक्रम = पराक्रम होनेवाला है। भूमि = पृथ्वी को सँभालनेवाला।

कवित्त

(7)

दान समै द्विज देखि मेरहू कुबेरहू की
संपति लुटायबे को हियो ललकत है।
साहि के सपूत सिव साहि के बदन पर
सिव की कथान में सनेह झलकत है।
भूषन जहान हिंदुवान के उबारिबे कौं
तुरकान मारिबे कौं बीर बलकत है।
साहिन सों लरिबे की चरचा चलत आनि
सरजा के दृगन उछाह छलकत है॥

शब्दार्थ – मेर = सुमेरु (सोने का पहाड़)। कुबेर = कुबेर धन के स्वामी माने गए हैं। ललकना = उमंग से भर जाना। जहान = संसार। उबारना = उद्धार करना। बलकना = आवेश में आकर अंडबंड बकना। आनि = आकर। उछाह = उत्साह (उमंग)। छलकना = उमड़ना।

(8)

सक्र जिमि सैल पर अर्क तकफैल पर
बिधन की रैल पर लंबोदर लेखिए।
राम दसकंध पर भीम जरासंध पर
भूषन ज्यों सिंधु पर कुंभज बिसेखिए।
हर ज्यों अनंग पर गरुड़ भुजंग पर
कौरव के अंग पर पारथ ज्यों पेखिए।
बाज ज्यों बिहंग पर सिंह ज्यों मतंग पर
म्लेच्छ चतुरंग पर सिवराज देखिए॥

शब्दार्थ – सक्र = इंद्र। सेल = पर्वत। अर्क = सूर्य। तम फैल = अन्धकार का फैलाव (अन्धकारसमूह)। रैल = रेला (समूह)। लंबोदर = गणेश। कुंभज = अगत्स्य। बिसेखिए = विशेषता रखते हैं। हर = महादेव। अनंग = कामदेव। भुजंग = सर्प। अंग = पक्ष। पारथ = पार्थ, अर्जुन। पेखिए = देखे जाते हैं। बिहंग = पक्षी। मतंग = हाथी।

(9)

गरुड़ को दावा जैसे नाग के समूह पर
दावा नागजूह पर सिंहसिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर
दावा सबै पच्छिन के गोल पर बाज को।
भूषन अखंड नवखंड महिमंडल में
तम पर दावा रबिकिरनसमाज को।
पूरब पछाँह देस दच्छिन तें उत्तर लौं
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को॥

शब्दार्थ – दावा = आधिपत्य। नाग = सर्प। नागजूह = हाथियों का झुंड। सिरताज = श्रेष्ठ । पुरहूत = इन्द्र। गोल = मंडली। अखंड = सम्पूर्ण। नवखंड = पृथ्वी के नवों खंड (भरत, इलावृत्त, किपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश)। रबिकिरन = सूर्य की किरणों का समूह। तें = से। लौं = तक। पातसाही = बादशाही।

(10)

बारिधि के कुंभभव घन बनदावानल
तिमिर पै तरनि की किरनसमाज हौ।
कंस के कन्हैया कामदेवहू के कंठनील
कैटभ के कालिका बिहंगम के बाज हौ।

भूषन भनत सबै असुर केइंद्र पुनि
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हौ।
रावन के राम कार्तबीज के परसुराम
दिल्लीपतिदिग्गज के सिंह सिवराज हौ॥

शब्दार्थ – बारिधि = समुद्र। कुंभभव = अगत्स्य। दावानल = दावाग्नि। तिमिर = अन्धकार। तरनि = सूर्य। कंठनील = नीलकण्ठ, महादेव। कैटभ = प्रसिद्ध राक्षस। बिहंगम = पक्षी। पन्नग = सर्प। पच्छिराज = गरुड़। कार्तबीज = सहस्रबाहु।

(11)

साजि चतुरंगसैन अंग मै उमंग धारि
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नादबिहद नगारन के
नदीनद मद गैबरन के रलत है।
ऐलफैल खैलभैल खलक में गैलगैल
गजन की ठैलपैल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धुरिधारा में लगत जिमि
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥

शब्दार्थ – चतुरंग = जिस सेना में हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल चारों अंग हों। बिहद = बेहद, अत्यधिक। नद = बड़ी नदी जैसे सिन्धु नद। गैवर = गजवर, श्रेष्ठ हाथी। रलत है = बह चलता है। ऐल = समूह, सेना। फैल = फैलने से, खैलभैल = (खलभल) खलबली। खलक = संसार। गैल = मार्ग। ठैलपैल = धक्कमधक्का। सैल = शैल, पहाड़। उसलत है = स्थान-भ्रष्ट हो जाते हैं। धूरि = उड़ी हुई धूल का समूह। थारा = थाल। पारावार = समुद्र।

(12)

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के
नाहीं ठहराने रावराने देसदेस के।
नग भहराने ग्राम नगर पराने सुनि
बाजत निसाने सिवराजजू नरेस के।
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के
भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के।
दल के दरारन तें कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेस के॥

शब्दार्थ – बाने = भाले के आकार का हथियार, इसमें झण्डा भी बाँध देते हैं। फहराने = हवा में हिलने लगे। घहराने = आवाज करने लगे। घंटा = हाथियों के गले में बँधे हुए घण्टे। न ठहराने = नहीं ठहर सके (रण में स्थिर न रह सके)। नग = पर्वत। भहराने = गिर पड़े। पराने = भाग गए। निसाने = धौसे, नगाड़े। हौदा = हाथी की पीठ पर रखा जानेवाला आसन, जिसमें लोग बैठते हैं। उकसाने = हिलडुल गए, स्थानभ्रष्ट हो गए। कुंभ = हाथी का मस्तक। कुंजर = हाथी। भौन = भवन, घर। भजाने = भागे। अलि = भौंरा। लट = बालों की लटें। केस = केश, बाल। (अन्वय – कुंजरकुंभ के अलि भौन को भजाने, केस के लट छूटे।) दल = सेना। दरार = रगड़। कमठ = कच्छप की पीठ। करारे = कठोर। केरा = केला। पात = पत्ता। बिहराने = फट गए। फन = शेषनाग के फण (सिर)।

(13)

प्रेतिनी पिसाचरु निसाचर निसाचरिहू
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है।
भैरो भूत-प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमाति जोरि आई है।
किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली
डिम डिम डमरू दिगंबर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चली
काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई है॥

शब्दार्थ – पिसाच = कच्चा माँस खानेवाले। निसाचर = राक्षस। बधाई = आनंदसूचक गान। भैरो = भैरव। भूरि = अधिक। भूधर = पहाड़ के समान भयंकर। जुत्थ = यूथ, झुंड। जमाति= समूह। जोरि = एकत्र करके। किलकि = किलकारी मारकर। डिमडिम = डमरू का नाद। दिगंबर = महादेव। सिवा = पार्वती। काहू पै = किसी पर। भृकुटी चढ़ाना = कुद्ध होना।

(14)

दावा पातासाहन सों कीन्हों सिवराज बीर
जेर कीन्हों देस हद्द बाँधी दरबारे से।
हठी मरहठी तामें राख्यो न मवास कोऊ
छीने हथियार डोलैं बन बनजारे से।
आमिष अहारी माँसहारी दै दै तारी नाचैं
खाँड़े तोड़े किरचैं उड़ाए सब तारे से।
पील सम डीलवारे गिरि से गिरन लागे,
मुंड मतवारें गिरैं झुंड मतवारे से॥

शब्दार्थ – दावा = बराबरी का हौसला। जेर = पराजित किया। तामें = उसमें। मवास = किला। बनजारे = जंगली व्यापारी। आमिष = कच्चा माँस। माँसहारी = माँस खानेवाले। खाँड़े = चौड़ी तलवारें। तोड़े = बन्दूकें। किरचैं = पतले फल की तलवारें। तारे से = तारों की तरह। पील = हाथी। मतवारे = नशे में चूर।

(15)

बेद राखे बिदित पुरान परसिद्ध राखे
राम-नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिंदु न की चोटी रोटी राखि है सिपाहिन की
काँधे में जनेऊ राख्यो मालाराखी गर में।
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेगबल सिवराज
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥

शब्दार्थ – रसना = जीभ। सुघर = सुंदर। रोटी = जीविका। गर = गला। मीड़ना = मसलना। कर = हाथ। तेग = (अरबी शब्द) तलवार।

(16)

राखी हिंदु वानी हिंदु वान को तिलक राख्यो
अस्मृति पुरान राखे बेद बिधि सुनी मैं।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की
धरा मैं धरम राख्यो गुन राख्यो गुनी मैं।
भूषन सुकबि जीति हद्द मरहट्ठन की
देसदेस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी
दिल्ली दल दाबि कै दिवाल राखी दु नी में॥

शब्दार्थ – राख्यो = रक्षा की। हिंदुबानी = हिंदुत्व। अस्मृति = (स्मृति) धर्मशास्त्र। बेदबिधि = वेद की रीति। रजपूती = क्षत्रियत्व। धरा = पृथ्वी। दिवाल = मर्यादा। दुनी = दुनिया।

(17)

दु ग्ग पर दु ग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी
उग्ग नाचे उग्ग पर रुंडमुंड फरके।
भूषन भनत बाजे जीति के नगारे भारे
सारे करनाटी भूप सिंहल कों सरके।

मारे सुनि सुभट पनारेवारे उद्धट
तारे लागे फिरन सितारेगढ़धर के।
बीजापुर-बीरन के गोलकुंडा धीरन के
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके॥

शब्दार्थ – दुग = दुर्ग, किला। गाजी = धर्म के लिए लड़नेवाला वीर। उग्ग = उग्र, महादेव। उग्ग = उग्र आकाश। जीति = विजय। सरके = खिसक गए (भागे)। सुभट = अच्छे योद्धा। पनारेवारे = परनाले के। उदभट = उद्भट, प्रचंड। तारे = आँखों में तारे घूमने लगे (क्रुद्ध हो गए)। सितारे = शिवाजी। मीर = राजवंश के लोग। दाड़िम = अनार।

(18)

कत्ताकी कराकनि चकत्ता को कटक काटि
कीन्ही सिवराज बीर अकह कहानियाँ।
भूषन भनत और मुलुक तिहारी धाक
दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानियाँ।
आगरेअगारन की नाँघती पगारन
सँभारती न बारन बदन कुम्हलानियाँ।
कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं
बीबी गहे सूथनी सुनीबी गहे रानियाँ॥

शब्दार्थ – कत्ता = छोटी टेढ़ी तलवार। कराकनि = कड़ाके से। चकत्ता = चगताई खाँ का वंशज (औरंगजेब)। अकह = अकथ्य, जो कही न जा सके। बिलाइत = विदेशी राज्य । बिललानियाँ = बिलख रही हैं। अगार = आगार, महल। पगार = चारदीवारी। बदन = मुख। कहा = क्या करेंगी। सुनीबी = सुन्दर फुफुँदी।

(19)

बाजिगजराज सिवराज सैन साजतही
दिल्लीदल गही दसा दीरघ दु ख न की।
ततियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न
घामैं घुघरात छोड़ि सेजियाँ सुखन की।
भूषन भनत पति बाँह बहियान तेऊ
छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की।
बालियाँ बिथुर जिमि आलियाँ नलिन पर
लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की॥

शब्दार्थ – बाजि = घोड़ा। दल = सेना। गही = ग्रहण की। दीरघ दुख = बहुत बड़ा दुःख। तनियाँ = चोली। तिलक = (तुर्की तिरलीक) ढीलाढाला लंबा कुर्ता। सुथनियाँ = पायजामा। पगनियाँ = जूतियाँ। घामै = (धर्म) धूप में। पति = जो अपने पति की बाँहों पर वहन की जाती थीं (जिन्हें प्रियतम प्यार से रखते थे)। तेऊ = वे भी। छहियाँ = छाया। ताकि = ढूँढ़ रही हैं। रूख = वृक्ष। आलियाँ = भ्रमरियाँ। नलिन = कमल। लालियाँ = ललाई (सौन्दर्य)।

(20)

बद्दल न होहिं दलदच्छिन उमंडिआयो
घटा ये नहोय इभ सिवाजीहँकारी के।
दामिनीदमंक नाहिं खुले खग्ग बीरन के
इंद्रधनु नाहिं ये निसान हैं सवारी के।
देखिदेखि मुगलों की हरमैं भवन त्यागैं
उझकिउझकि उठैं बहत बयारी के।
दिल्लीपति भूलमति गाजत न घोरघन
बाजत नगारे ये सितारेगढ़धारी के॥

शब्दार्थ – इभ = हाथी। हँकारी = अहंकारी। दामिनी = बिजली। दमक = चमक। खग्ग = खड्ग, तलवार। निसान = झंडा। हरमैं = रानियाँ। भवन = महल। उझकि = घबरा जाती हैं। बयारी = हवा। भूल = गलती न कर। गाजत न = नहीं गरजते हैं। घोर घन = भारी बादल। सितारे = सितारा गढ़ के स्वामी, शिवाजी।

(21)

उतरि पलँग तें न दियो हैं धरा पै पग
तेऊ सगबग निसिदिन चली जाती हैं।
अतिअकुलातीं मुरझातीं न छिपातीं गात
बात न सोहाती बोले अतिअनखाती हैं।
भूषन भनत सिंह साहि के सपूत सिवा
तेरी धाक सुने अरिनारी बिललाती हैं।
जोन्ह में न जातीं ते वै धूपै चली जातीं पुनि
तीन बेर खातीं ते वै तीनबेर खाती हैं॥

शब्दार्थ – धरा = पृथ्वी। पग = पैर। सगबग = भयभीत। गात = शरीर। अनखाना = बिगड़ उठना। जोन्ह = ज्योत्स्ना, चाँदनी। धूपै = धूप में।

(22)

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंद मूल भोग करैं कंद मूल भोग करैं
तीन बेर खातीं ते वै तीनबेर खाती हैं।
भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग
बिजनडुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं।
भूषन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं॥

शब्दार्थ – घोर = भारी। मंदर = मंदिर, महल। अंदर = भीतर। रहनवारी = रहनेवाली। घोर = भयंकर। मंदर = पर्वत। रहाती हैं = रहती हैं। कंद = मिश्री। मूल = तत्त्व। कंदमूल = बढ़िया, मीठा। भोग = खाती थीं। कंदमूल = कंदा और जड़। तीन बेर = तीन दफे, तीन बार। तीन बेर = तीन बेर (बदरीफल), जंगली बेर। सिथिल = सुस्त। भूषन = भूखों से। बिजन = पंखा। डुलातीं = झलती थीं। बिजन = निर्जन, जहाँ कोई मनुष्य न हो (ऐसे जंगलों में)। डुलाती = डोलती (घूमती) हैं। त्रास = डर। नगन = रत्नों को। जड़ातीं = जड़वाती थीं। नगन = नग्न, नंगी। जड़ातीं = जाड़ा खाती हैं।

(23)

अंदर तें निकसीं न मंदिर को देख्यो द्वार
बिन रथ पथ ते उघारे पायँ जाती हैं।
हवाहू न लागती ते हवा तें बिहाल भई
लाखन की भीर में सँभारती न छाती हैं।
भूषन भनत सिवराज तेरी धाक सुनि
हार डारि चीर फारि मन झु झलाती हैं।
ऐसी परीं नरम हरम बादसाहन की
नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं॥

शब्दार्थ – मंदिर = मकान, महल। पथ = रास्ता। बिहाल = बिह्वल, व्याकुल। हार = माला। चीर = वस्त्र। बनासपाती = वनस्पति, घासपात।

(24)

अतर गुलाब चोवा चंदन सुगंध सब
सहज सरीर की सुबास बिकसाती हैं।
पल भरि पलँग तें भूमि न धरत पाँव
तेई खानपान छोड़ि बन बिललाती हैं।
भूषन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास
हारभार तोरि निज सुधि बिसराती हैं।
ऐसी परीं नरम हरम बादसाहन की
नासपाती खाती ते बनासपाती खाती हैं॥

शब्दार्थ – चोबा = सुगंधित द्रव पदार्थ जो कई गन्धद्रव्यों को मिलाकर तैयार किया जाता है। सहज = स्वाभाविक। सुवास = सुगंध। विकसाती = फैलाती हैं।

(25)

आई चतुरंग सैन सिंह सिवराजजू की
देखि पातसाहन की सेनां धरकत हैं।
जुरत सजोर जंग जोम-भरे सूरन के
स्याह स्याह नागिंन लौं खग्ग खरकत हैं।
भूषन भनत भूत प्रेतन के कंधन पै
टाँगी मृतबीरन की लोथें लरकत हैं।
कालमुख-भेंटे भूमि रुधिर-लपेटे
परकटे पठनेटे मुगलेटे फरकत हैं॥

शब्दार्थ – जुरत = भिड़ते हैं। सजोर = बल-सहित। जोम = उत्साहयुक्त। स्याह = काली। परकटे = पंख कटे हुए। (हाथ-पैर कटे)।

❖❖❖

घनानन्द

कवि-प्रशस्ति

प्रशस्तिकार – ब्रजनाथ

सवैया

(1)

नेही महा, ब्रजभाषा-प्रबीन औ सुन्दरतानि के भेद को जानै।
जोग-वियोग की रीति में कोबिद, भावना भेद-स्वरूप को जानै।
चाह के रंग मैं भीज्यो हियो, बिछुरें मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै, सो घन जी के कवित्त बखानै॥

शब्दार्थ – भावना = वृत्तियों के भेद का रूप ठीक-ठीक बतला सके, कह सके (कवि पक्ष), वृत्तिभेद के रूप को ग्रहण कर सके (भावक पक्ष)। चाह = प्रिये को पाने की उत्कट इच्छा। बिछुरें = प्रिय के बिछुड़ने और (बिछुड़ने के अनन्तर) मिलने पर जो शान्ति न रहे – उसे पाने और भेंटने के लिए विह्वल हो जाए। भाषा-प्रबीन = भाषा की शक्तियों और शैलियों का प्रयोक्ता; भाषा की गतिविधि से पूर्णतया परिचित। सुछंद = स्वच्छन्द साहित्य की रूढ़ परंपरा से मुक्त, रीतिमुक्त, साहित्यशास्त्र के नियमों का अनाग्रही। कवित्त = (कवित्व) कविता, काव्य। बखानै = प्रशंसा कर सके, उसके अर्थतत्त्व की मीमांसा कर सके।

(2)

प्रेम सदा अति ऊँचो लहैं सु कहैं इहि भाँति की बात छकी।
सुनि कै सब के मन लालच दौरे, पै बौरे लखैं सब बुद्धि चकी।
जग की कविताई के धोखें रहै ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी।
समुझै कविता घनआनंद की हिय आँखिन नेह की पीर तकी॥

शब्दार्थ – अति ऊँचो = उत्तम कोटि का, परमोच्च। छकी = काव्यगुणों से परिपूर्ण। लालच = सुनने की लालसा। बौरे = (बातुल) काव्य की रीति और अनुभूति से अनभिज्ञ। बुद्धि चकी = चकित बुद्धि से, आश्चर्यचकित होकर। जग की कविताई = हिन्दी-काव्य जगत् की प्रवाहमान् (रीतिबद्ध) काव्य-रचना। ह्याँ = यहाँ इनकी कविता के अर्थ व्यंग्य का निश्चय करने में। जाति जकी = चकपकाती है। हिय आँखिन = हृदय के नेत्रों से। नेह की पीर = प्रेम की वेदना। तकी = देखी हो, अनुभव की हो।

मूल पाठ

कवित्त

(1)

लाजनि लपेटि चितवन भेद-भाय-भरी,
लसति ललित लोल चख-तिरछानि मैं।
छबि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानी मैं।
दसन-दमक फैलि हियें मौती-माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं।
आनँद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि मैं॥

शब्दार्थ – लपेटि = लिपटी हुई, युक्त। भेद-भाय = रहस्यात्मक भाव, गूढ़ भाव। लोल = चंचल। चख = चक्षु। बदन = मुख। दसन-दमक फैलि हियें मौती-माल होति = दाँतों की दमक फैलाकर हृदय (वक्षःस्थल) पर मोती की माला का रूप धारण करती है। लड़कि = ललकि, ललकार। निधि = कोश, खजाना। बाल = बाला, प्रेमिका। अनंग-रंग = कामजन्य रंग (छटा से मिलकर)। ढुरि = मिलकर, छहरना। मुरि जानि मैं = मुड़ जाने में, घूम जाने में।

सवैया

(2)

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।
हँसि बोलनि मैं छबि फूलन की बरखा उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग-अँग तरंग उठे दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै॥

शब्दार्थ – छके = (यौवन के मद से) मस्त। काननि छवै = कानों को छूकर, कानों तक फैलकर। कपोल = कपोलों पर। कलोल करै = हिलती है। कल कंठ = सुन्दर ग्रीवा पर। जलजावलि द्वै = (जलज = जल से उत्पन्न मोती + अवलि = समूह, लड़), दो-दो लड़ की मोतियों की माला। रूप = सौन्दर्य रूप, चाँदी। धर = धरा पर, पृथ्वी पर।

कवित्त

(3)

छवि को सदन मोद मंडित बदन-चंद,
तृषित चखनि लाल ! कब धौं दिखायहौ ।
चटकीलों भेख करें भटकीली भाँति सोंही,
मुरली अधर धरे लटकत आयहौं ।
लोचन ढुराय, कछु मृदु मुस्क्यान् नेह,
भीनी बतियानी लड़काय बतरायहौ ।
बिरह जरत जिय जानि, आनि प्रान प्यारे,
कृपानिधि ! आनँद को घन बरसायहौ ॥

शब्दार्थ – मोद = प्रसन्नता, प्रफुल्लता । चटकीलों = भड़कीला । भाँति = शैली । लटकत = मस्ती से झूमते हुए । ढुराय = हिलाकर, इधर-उधर, मटकाकर । नेह = प्रेम से सिक्त । लड़काय = ललक कर, ललक उपजाकर । जानि = आकर । कृपानिधि = कृपा के सागर ।

(4)

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै,
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है ।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तें न टरति है ।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छलताई न छिनक बिसरति है ।
आनँद निधान प्रान प्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करति है ॥

शब्दार्थ – लड़कीली = ललकवाली । अरति है = अड़ती है, अवस्थित हो जाती है । गति लैन = मस्ती से चलना । बैन = वेणु, बाँसुरी । चिताई = चैतन्य की हुई, जगाई हुई । चाहिबे की = देखने की । निधान = कोश, खजाना । सुधि = स्मृति । बेसुधि = बेहोशी, विस्मृति ।

(5)

जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह,
कैसें करि जिय की जरनि सो जताइये ।
महा निरदई, दई कैसें के जिवाऊँ जीव,
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइये ।

दु ख को बखान करिबे कौं रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ बाको मुख देखन न पाइये ।
रैन-दिन चैन को न लेस कहूँ पैये भाग,
आपने ही ऐसे, दोष काहिं कौं लगाइये ॥

शब्दार्थ – निपट = अत्यधिक । कैसें = किस प्रकार । जताइये = जतलाऊँ, बताऊँ । दई = दैव । बेदन = वेदना, पीड़ा । बढ़वारि = बढ़ती, अधिकता । दुराइये =छिपाऊँ । बखान = कथन । कैं = यदि, कहीं । ऐपै = इतने पर भी । भाग = भाग्य । काहिं = किसे ।

सवैया

(6)

भोर तें साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरि नेकु न हारति ।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति ।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति ।
मोहन-सोहन जोहनि की लगियै रहै आँखिन के उर आरति ॥

शब्दार्थ – भोर = सबेरा । न हारति = थकती नहीं । तारनि = तारों को देखना । सों = पुतलियों से, आँखों से । इकतार = लगातार, एकरस । न टारति = छोड़ती नहीं । भावतो = भानेवाला, प्रिय । आँसुनि औसर गारति = आँसुओं से अक्सर गार (खो) देती है । प्रिय दिखाई पड़ने पर उसके आँसू क्या गिरते हैं, अवसर ही गिर जाता है । आँसू के रूप में अवसर ही टपककर निकल जाता है । आँसुओं के प्रवाह के कारण अवसर आने पर भी देखने का अवसर नहीं मिलता, देख नहीं पाती । सोहन = सामने । जोहनि की = देखने की । आरति = आर्ति, लालसा ।

कवित्त

(7)

भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दु ख हमैं जक लागी हाय हाय है ।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल सेलनि सो क्यौंहूँ न भुलायहै।
मीठे-मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलै तौ तब,
अब जिय जात, कहौ धौं कौंन न्याय है ।
सुनी है के नाहीं, यह प्रगट कहावति जू,
काहू कलपायहै सु कैसे कल पायहै ॥

शब्दार्थ – निठुर = निष्ठुर, निर्दय। मिटाय पहचानि डारी = पहचान ही भुला दी, एकदम भुला दिया। जक = रट। निपट = अत्यन्त। सूल सेलनि = वेदना की कसक, पीड़ा की अनुभूति। क्यौंहूँ = किसी प्रकार से भी। न भुलायहै = भूलती ही नहीं। धौं = तो। के = कि, या। प्रगट = प्रसिद्ध प्रख्यात, प्रत्यक्ष। जू = एजी !। कलपायहै = तरसाएगा, कष्ट देगा। सु = सो, वह। कल = सुख, चैन।

सवैया

(8)

हीन भएँ जल मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि-समाने।
नीर-सनेही कों लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समुझै जड़, मीत कै पानैं-परै कौ प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै॥

शब्दार्थ – हीन भएँ जल = जल से हीन होने पर, जल से वियुक्त होकर। मीन अधीन = मछली अधीन या विवश हो जाती है, व्याकुल होती है। कहा = क्या। कछु = थोड़ा भी। मो अकुलानि-समाने = मेरी आकुलता की समता कर सकता है। हीन भएँ जल मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि-समाने = जल से वियुक्त होने पर विवश मीन क्या मेरी आकुलता की कुछ भी समता कर सकती है। नीर सनेही कों = प्रियजल को। लाय कलंक = कलंक लगाकर। निरास ह्वै = निराश होकर, आशा को त्यागकर, भरोसा छोड़कर। कायर = डरपोक, प्रेमी में उत्साह बनाये न रखनेवाला (मीन)। जड़ = अचेतन। मीत = मित्र, प्रिय। पानैं = हाथों में। प्रमानै = प्रमाणित करता है, सिद्ध करता है। जड़ मीत कै पानैं-परै कौ प्रमानै = अपने प्रिय अचेतन जल के हाथों में पड़ने को प्रमाणित करता है, जड़ जल के वश में पड़ने से (प्रेमी के प्रति उसकी अचेतनसामान्य असहृदयता से) तड़पता हुआ मर जाता है। जु = जो। जीव की जीवनि = जी को जलानेवाली। जान = सुजान, प्रेयसी।

(9)

मीत सुजान अनीति करौ जिन हा हा न हूजियै मोहि अमोही।
दीठि कौं और कहूँ नहिं ठौर फिरी दृग रावरे रूप की दोही।
एक बिसास की टेक गहे लगि आस रहे बसि प्रान-बटोही।
हौ घनआनँद जीवन मूल दई कित प्यासनि मारत मोही॥

शब्दार्थ – मीत = मित्र। सुजान = सुज्ञान, अच्छे जानकार, श्रीकृष्ण का विशेषण, घनानन्द की प्रेमिका का नाम। अनीति = अन्याय। जिन = मत, नहीं। हा हा = खेदव्यंजक अव्यय। मोहि = मोहित करके। अमोही = मोह से रहित, प्रेमशून्य व्यक्ति। दृग = मेरे नेत्रों से। रावरे = आपके। रूप =

छवि, शोभा। दोही = दुहाई। एक = केवल। बिसास = विश्वास। टेक = सहारा, आसरा। लगि आस = आशा से लगकर, आशा लगाये हुए। रहे = बसे हुए हैं। बटोही = पथिक, यात्री। घनआनँद = आनन्द के बादल, अत्यन्त आनन्ददायक (प्रिय), कवि की छाप। जीवनमूल = जल के भण्डार; प्राण के तत्त्व। दई = दैव। प्यासनि = प्यासों (अनेक प्रकार की प्रेमजन्य लालसाओं)।

(10)

पहिले घनआनँद सींचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार पगी।
अब लाय बियोग की लाय बलाय बढ़ाय बिसास-दगानि दगी।
अँखियाँ दु खियानी कुबानि परीं न कहूँ लगैं कौन घरी सु लगी।
अति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह मिठास ठगी॥

शब्दार्थ – पहिले = संयोगावस्था में। घनआनँद = आनन्द के बादल, घनानन्द कवि की छाप। सुजान = चतुर, प्रेयसी का नाम, श्रीकृष्ण का विशेषण। लाय = लगाकर। लाय = आग। बलाय = बला, विपत्ति, कष्ट। बिसास = विश्वास। दगा = धोखा, कपट, दागने की क्रिया। दगी = दागी, जलायी। कुबानि = कुटेव। न कहूँ = कहीं लगती नहीं, आँखों को कुछ देखना सुहाता नहीं। घरी सु लगी = कैसी घड़ी लगी है, कैसा समय आ पड़ा है। दौरि = विचार करने की दौड़ में दौड़कर, विचार करते-करते। ठिक = ठौर-ठिकाना। न लहै ठिक ठौर = ठौर-ठिकाना नहीं पाती, किसी विषय पर टिक नहीं पाती। मोह मिठास = मोह के मिठास से। ठगी = ठगी हुई।

(11)

तब तौ छबि पीवत जीवत हे, अब सोचन लोचन जात जरे।
हित पोष के तोष सु प्रान पले, बिललात महा दु ख-दोष भरे।
घनआनँद मीत सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।
तब हार पहार से लागत हे, अब आनि कै बीच पहार परे॥

शब्दार्थ – तब = संयोगावस्था में। छबि पीवत = शोभा (के अमृत) का पान करते हुए, सौन्दर्य निरखते हुए। जीवत = जीते। हे = थे। अब = वियोगावस्था में। हित = प्रेम। पोष = पोषण। तोष = तुष्टि। सु = भली-भाँति (अथवा सो = वह, या सु = सुन्दर, पोष की प्राप्ति के कारण, प्राण का विशेषण)। बिललात = व्याकुल हो रहे हैं। दोष = क्लेश। साज = विधि-विधान, साज-सज्जा। समाज = समूह। टरे = हट गये, दूर हो गये। हार = माला (मोतियों की)। हे = थे। बीच = प्रिय और मुझ विरही के मध्य।

(12)

पहलें अपनाय सुजान सनेह सों, क्यौं फिरि तेह कै तोरियै जू।
निरधार अधार दै धार-मझार, दई! गहि बाँह न बोरियै जू।
घनआनँद आपने चातिक कों, गुन-बाँधि लैं, मोह न छोरियै जु।
रस प्याय कै ज्याय, बढ़ाय कै आस, बिसास मैं यौं बिसघोरियै जू॥

शब्दार्थ – पहलें = संयोगावस्था अथवा पूर्वराग के अनन्तर। अपनाय = जिसे कोई अपना करके मानने को प्रस्तुत न हो उसे अपनाकर। सनेह सों = प्रेमपूर्वक दिखावटी अपनाना नहीं, वास्तविक सौहार्द से अपनाना। तेह = रो (सनेह में चिकनाहट, रोष में रूखापन)। तोरियै = प्रेम सम्बन्ध तोड़ते हैं। निरधार = निराधार, जिसका सहारा कुछ भी न हो। गहि बाँह = बरबस, बलपूर्वक डुबोना। आपने = जो आपका ही हो, किसी दूसरे से जिसका कोई सम्बन्ध या सम्पर्क न हो। गुन = गुण, विशेषता, डोर, फंदा। बाँधि लैं = बाँध लेकर। मोह न छोरियै = प्यार-ममत्व का त्याग मत कीजिये। रस = आनन्द (अमृतवत्), मीठी पेय। प्याय = पिलाकर। ज्याय = जिलाकर। बिसास = विश्वास। यौं = इस प्रकार जैसे आप कर रहे हैं। बिसास मैं = कहीं विश्वास में आपकी भाँति विष घोला जाता है। बिसघोरियै = अग्राह्य बना देना।

(13)

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आनि तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वार्‌यौ सुजान सकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै घनआनँद बावरी रीझि के हाथनि हारियै॥

शब्दार्थ – रूप = सौन्दर्य, चाँदी। अनूप = अनुपम, पानी से रहित (अन् + ऊप)। नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै = सौन्दर्य या रमणीयता का लक्षण यह है कि – "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः॥" बानि = टवे, सहज वृत्ति, कभी नहीं, किसी प्रकार नहीं। आनि = शपथ। हुतौ = था। सु = सो, वह। वार्‌यौ = निछावर कर दिया। सोच = चिन्ता। सहारियै = सहारा दीजिए, अपने ऊपर लीजिए, सम्भालिए। रोकी रहै न = मेरे रोके नहीं रुकती। दहै = जलाती है। बावरी = पगली, बेठिकाने की, विलक्षण। हाथनि हारियै = (रीझ के) हाथों हार माननी पड़ती है, विवश हो जाना पड़ता है।

कवित्त

(14)

तब ह्वै सहाय हाय कैसें धौं सुहाई ऐसी
सब सुख संग लै बियोग दु ख दै चले।
सींचे रस रंग अंग-अनंग अंगनि सौंपि
अंतर मैं विषम विषाद-बेलि बै चले।
क्यौं धौं ये निगोड़े प्रान जान घनआनँद के
गौहन न लागे जब ये करि बिजै चले।
अति ही अधीर भई पीर-भीर घेरि लई
हेली मनभावन अकेली मोहि कै चले॥

शब्दार्थ – ह्वै = होकर, हुए। सहाय = सहायक, प्रेम में साथ देने वाले। सुहाई = (अब) ऐसी (दुःखद) बातें कैसे अच्छी लगीं ? रस = जल, प्रेम। सींचे रस रंग अंग-अनंग अंगनि सौंपि = अपने प्रेम के रंग से युक्त मेरे अंगों को काम के हवाले करके। अंतर = हृदय। बै = बोकर। निगोड़े = स्त्रियों की गाली, जिसके यहाँ कोई गोड़ (व्यक्ति) न हो; निर्वंश; जिसके गोड़ (पैर) न हों, चलाने में अशक्त। गौहन = साथ। बिजै = विजय, हृदय पर विजय प्राप्त करके, हृदय को वश में करके। पीर-भीर = पीड़ाओं की भीड़, वेदनाओं की राशि। हेली = (खेली अथवा हेला करने वाले) खेल करने वाले, खिलाड़ी, क्रियाशील (अथवा हे अली, हे सखी)। मनभावन = मन को भानेवाले प्रिय।

सवैया

(15)

निस-द्यौस खरी उर-माँझ अरी, छबि रंग-भरि मुरि चाहनि की।
तकि मोरनी त्यौं चख ढोर रहे, ढरि गौ हिय ढोरनि बाहनि की।
चटि दै कटि पै बटि प्रान गए गति सौं मति मैं अवगाहनि की।
घनआनँद जान लखी जब तें जक लागियै मोहिं कराहनि की॥

शब्दार्थ – निस-द्यौस = रात-दिन। खरी = उत्कृष्ट (छवि)। उर-माँझ अरी = हृदय में अड़ी है। रंग-भरि = वर्ण की दीप्ति से युक्त। मुरि चाहनि की = जाते हुए मुड़कर देखने की छटा। निस-द्यौस खरी उर-माँझ अरी, छबि रंग-भरि मुरि चाहनि की = प्रिय के जाते हुए मुड़कर मेरी ओर देखने के समय की उसकी आनन्ददायिनी और उत्कृष्ट छवि हृदय में निरन्तर अड़ी-डटी रहती है। तकि मोरनी = देखकर मुड़ जाना। त्यौं = उसी प्रकार। चख = नेत्र। ढोर रहे = पीछे हो लिये, साथ लगे। ढरि गौ = ढल गया। ढोरनि = ढर्रे पर। बाहनि की = जल के प्रवाह के ढंग से। तकि मोरनी त्यौं चख

ढोर रहे, ढरि गौ हिय ढोरनि बाहनि की = जिस प्रकार उनके मुड़कर देखने की छवि मन में छायी है उसी प्रकार देखकर जब वे मुड़े तो नेत्र उस छटा के पीछे लगे। नेत्र और छवि तक जो दृष्टि की नली-सी बँधी थी उस नली से हृदय उसी प्रकार बहकर उनसे जा मिला जिस प्रकार प्रणाली से पानी ढलकर गंतव्य तक पहुँचता है। चटि दै = शीघ्रता करके। बटि गए = रस्सी जैसे लड़ें मिलाते समय चक्कर खाती है। प्रान = प्रिय। चटि दै कटि पै बटि प्रान गए = कमर को शीघ्रता देते हुए, शीघ्रता से कमर को मोड़ते हुए प्रिय ने ऐसे चक्कर काटा जैसे बटी जाती हुई रस्सी चक्कर खाती है। प्रान गए = प्रिय निकाल गये, बचाकर चले गये। गति सौं = मुद्रा। मति मैं = बुद्धि में डुबकी लगाने की मुद्रा से। गति सौं मति मैं अवगाहनि की = कमर को फुरती से घुमाकर कूदने की मुद्रा में प्रिय बुद्धि को थहाते हुए निकल गये। जक = धुन। घनआनंद जान लखी जब तें जक लागियै मोहिं कराहनि की = घना आनन्द देनेवाले सुजान को जब से देखा है तब से कराहने की रट लगी हुई है।

कवित्त

(16)

ए रे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, बीरी,
तोसो और कौन, मनै ढरकौहीं बानि दै।
जगत के प्रान, ओछे बड़े सों समान घन,
आनँद निधान, सुखदान दुखियानि दै।
जान उजियारे गुन-कारे अन्त मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।
बिरह-विथाहि मूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायन की हा हा ! नेकु आनि दै॥

शब्दार्थ – बीर = भाई। पौन = पवन। गौन = गमन। बीरी = बीड़ा उठानेवाला, कार्य परिपूर्ण करने में उत्साह दिखानेवाला। मनै ढरकौहीं बानि दै = मन को ढलनेवाली टेव सिखा, अपना मन दूसरों पर द्रवित कर। जगत के प्रान = संसार के प्राण तुम्हीं हो। ओछे = छोटे। सों = को। घन आनँद निधान = घने आनन्द का कोश ही है। सुखदान दुखियानि दै = दुखियों को सुख दे, उन्हें सुखी कर। जान = सुजान। उजियारे = दीप्तिमान, यशस्वी। गुन-कारे = गुणों की स्थिति के कारण महत्त्वशाली, परम गुणी। अन्त = अन्यत्र, विदेश से। बैठे पीठि पहिचानि दै = पहचान कर लेने पर पीठ फेरकर बैठ गये हैं। परिचय देकर पराङ्मुख हो गये हैं। (अथवा पहचान को ही पीठ दे रखी है, पहचानने से ही विमुख हैं, मेरी प्रीति को ही विस्मृत कर बैठे हैं।) बिरह-विथाहि मूरि = विरह की वेदना को दूर करनेवाली जड़ी। आँखिन मैं राखौ पूरि = आँखों में भली-भाँति लगाऊँ। धूरि तिन पायन की हा हा ! नेकु आनि दै = उन चरणों की धूलि थोड़ी-सी ही लाकर मुझे दे।

सवैया

(17)

अति सूधो सनेह को मारग, है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ, यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

शब्दार्थ – सूधो = सीधा, सरल, ऋजु। सयानप = चतुरता। बाँक = बंक, टेढ़ा (यहाँ भाव है कि इसमें टेढ़ा चातुर्य थोड़ा भी नहीं, इसमें कुटिलता का नाम नहीं)। निसाँक = निःशंक। एक तें = प्रिय के प्रेम की ही रेखा खिंच गयी, उसके अतिरिक्त अन्य कोई रेखा नहीं खिंच सकती। पाटी = पट्टी। पाटी पढ़े = पट्टी पढ़ना, ज्ञान या शिक्षा प्राप्त करना। तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ = आपने न जाने कैसी पट्टी पढ़ रखी है, न जाने कैसी शिक्षा पायी है। मन = हृदय, 40 सेर। ('मन' को उलटने से 'नम' = नमस्कार, झुकाव, प्रवृत्ति) छटाँक = थोड़ा, सेर का सोलहवाँ भाग। ('छटाँक' को उलटने से 'कटाँछ' यानी कटाक्ष भी होता है अथवा छटा + अंक = शोभा की झलक)।

कवित्त

(18)

कारी-कूर कोकिला ! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि-कूकि अबही करेजो किन कोरि लै।
पैड़ें परे पापी ये कलापी निस द्यौस ज्योंही,
चातक ! घातक त्यौंही तुहू कान फोरि लै।
आनँद के घन प्रानजीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।
जौं लौं करै आवन विनोद-बरसावन वे,
तौ लौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै॥

शब्दार्थ – बैर काढ़ति = बदला निकालती है। किन कोरि लै = कुरेद कर निकाल क्यों नहीं लेती। पैड़ें = पीछे पड़े हैं। कलापी = (कलाप, मयूर की पूँछ, कलापिन्) मयूर। घेरौ = घेरनेवाला। दल = सेना। विनोद-बरसावन = विनोद अर्थात् आनन्द की वृष्टि करने वाले, सुखदायी। डरारे = डरावने, भयंकर। बजमारे = वज्र मारने वाला, वज्र का मारा हुआ, जो वज्र के मारने पर भी न मरे (स्त्रियों की गाली), परम दुष्ट। घोरि लै = गर्जन कर ले।

❖❖❖